सिद्ध योग

वर्ष—७
अङ्क—४

संस्थापक सम्पादक संरक्षक १००८

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

जुलाई
१९७४

वार्षिक मूल्य
१२ रुपया

एक अंक
का
१-५०

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन सवाँई एत्मादपुर (आगरा)

प्रकाशक

संयुक्त सम्पादक
श्री दिव्य

इस अंक में :—

पृष्ठ	लेख	लेखक
१	शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः	....
२	हमारा विशेष लेख— विभूतिपाद की विभूतियाँ	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज
१०	बुद्धि की महिमा	स्व० श्री सानिगुरु
१६	वृत्ति-साक्षात् और योग	श्री ओमप्रकाश पालीवाल आचार्य
२०	प्रत्याहार से अन्तर्मुखी-साधना	श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. कविरत्न
३०	योगसिद्धियाँ और उनकी-प्राप्ति	श्री अमीरचन्द शास्त्री
३४	जीवन तत्त्व साधन उत्क्षेपण	श्री गिरीशदेव वर्मा
४३	नरक के दारुण दुःख	श्री चन्द्रभान गुप्ता
४५	श्री गुरुपूजन माहात्म्यम्	पं० किशोरीलाल शास्त्री
४८	हे गुरुदेव !	सन्त ज्ञानेश्वर

आवश्यक सूचना

प्रत्येक योग प्रेमी भाई-बहन को यह सूचित करना आवश्यक है कि श्री गुरुदेवजी महाराज (योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज) आगामी दो या तीन मास तक लगातार तपश्चर्या एवं एकान्तवास में रहेंगे।

अतः इस बीच में वे किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं कर सकेंगे। किसी भाई-बहन को कुछ विशेष ही पृष्टव्य हो तो वह श्री सिद्धयोग कार्यालय सवाई आश्रम को पत्र लिखकर पूछ-गछ कर सकते हैं।

व्यवस्थापक
'सिद्धयोग'

सिद्ध योग

वर्ष ७
अङ्क ४

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखं न विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

जुलाई
१९७४

❀ श्रृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ❀

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते,
करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु
श्रृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥

अर्थात्

जो वाणी भगवान् के गुणों का गान करती है, वही सच्ची वाणी है। वे ही हाथ सच्चे हाथ हैं, जो भगवान् की सेवा के लिये काम करते हैं। वही मन सच्चा मन है, जो चराचर प्राणियों में निवास करने वाले भगवान् का स्मरण करता है; और वे ही कान वास्तव में कान कहने योग्य हैं, जो भगवान् की पुण्यमयी कथाओं का श्रवण करते हैं।

हमारा विशेष लेख—

विभूतिपाद की विभूतियाँ

[योगयोगेश्वर अनन्त श्रीचन्द्रमोहनजी महाराज]

ॐ

भिन्न-भिन्न समयों पर 'सिद्धयोग' में प्रकाशित होने वाले हमने अपने लेखों में यह भली-भांति समझाने का प्रयत्न किया है कि सिद्धियों का आधार संयम है। संयम सिद्ध हो जाने पर ही योगी को सकल सिद्धियाँ उपलब्ध होती है। योग दर्शन के विभूतिपाद में भगवान पतंजलि देव ने जिन-जिन सिद्धियों का जिक्र किया है वे सब संयम पर आधारित है। इससे पहले कि मैं सिद्धियों का वर्णन करूँ 'संयम' का अर्थ समझा देना परमावश्यक है। संयम की परिभाषा लिखते हुए भगवान पतंजलिदेव अपने एक बहुत छोटे से सूत्र में लिखते हैं—

त्रयमेकत्र संयमः ॥

इस सूत्र पर श्री व्यास भाष्य की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं :

एक विषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति।

अर्थात् धारणा ध्यान समाधि तीनों साधनों का एक लक्ष्य में लक्षित हो जाना ही संयम की सही परिभाषा है। इस बात को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए। जैसे एक नया साधक ज्योंही योगाभ्यास करना आरम्भ करता है उसके सामने पहला लक्ष्य रहता है धारणा को सिद्ध करना। साधक धारणा को सिद्ध करने को कोई अभ्यास आरम्भ करता है तो धारणा के लक्षीभूत किसी एक देश को अपने चिन्तन का आधार बनाता है। धारणा का लक्षण भी बतलाते हुए भगवान पतंजलि देव ने लिखा है—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥

अर्थात् किसी एक लक्ष्य में अपने चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेवजी धारणा की परिभाषा समझाते हुए, धारणा स्थलों का निर्देश इस प्रकार करते हैं :

नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाऽग्रइत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्तिमात्रेणबन्ध इतिधारणा।

अर्थात् जिस समय साधक धारणा का अभ्यास करना आरम्भ करे तब वह मन के चिन्तन से ही धारणा के लक्ष्य को केन्द्रित करे। और योगाचार्यों के अनुकूल स्थान नाभिचक्र, हृदयकमल, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र,

जिह्वाग्र, जिह्वामूल आदि-आदि हैं । जिस समय कोई भी योगी साधक उपरोक्त धारणा स्थलों को लक्षित केन्द्र बनायेगा तो वहां का सब दृश्य धीरे उसके सामने आने लगेगा, एवं उसका सर्वाधिक मन धारणा स्थल में एकाग्र हो जायेगा । धारणा का फल है मन की ताकत का बढ़ जाना । भगवान् पतंजलि देव स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं—

धारणासु योग्यता मनसः ।

धारणा मन को ध्यान करने लायक बल दे देती है । किन्तु अभ्यासी साधक को धारणा के विषय में सफलता लाभ करने के लिए यह याद रखना चाहिए कि वह धैर्य को न छोड़े । यह इस प्रकार का कोर्स है, यदि साधक इसको परिपक्व कर डालेगा तो आगे की भूमिकाओं मे उसको कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं रहेगी । भगवान् पतंजलिदेव इसके बारे में निर्देश करते हैं कि—

सतु दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढ़-भूमि ॥

अर्थात् एक अभ्यास को परिपक्व करने के लिए उसको लम्बे समय तक करते ही रहना चाहिए । ताकि वह परिपक्वता पा जाये । और यह भी परमावश्यक है कि उस अभ्यास में अभ्यास करने वाले साधक की परिपक्व निष्ठा हो अर्थात् उस ही साधन को अपना उत्कृष्ट लक्ष्य बनावे । साधन के प्रति साधक के मन में आदर बुद्धि रहनी चाहिए । और जिस समय अभ्यास आरम्भ करे उसको लगातार आदर पूर्वक लम्बे समय तक करता चला जाय । ऐसा करने पर ही साधक ध्यान-धारणा आदि के परिणाम को समझ सकेगा । साधक ज्यों-ज्यों धारणा के अभ्यास को परिपक्व बनाता चला जायेगा त्यों-त्यों वह धारणा ही ध्यान के रूप में बदलती चली जायेगी । धारणा का अभ्यास इतना परिपक्व हो जायेगा कि चिन्तन-मात्र से ही मन धारणा में अपने आप केन्द्रित होने लगेगा । यह अभ्यास ज्योंही पूर्णता को प्राप्त हो जायेगा त्योंही यह परिवर्तित धारणा ध्यान बन जायेगी । ध्यान का लक्षण बतलाते हुए योगदर्शन में लिखा गया है—

तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥

अर्थात् धारणा के लक्षीभूत विषय में तैल धारा वत् मन का सतत् प्रवाहित होना ध्यान कहलाता है । अब पढ़िये श्री व्यासदेवजी की व्याख्या—

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्यय-स्यैकतानता=सदृशः प्रवाहः प्रत्यान्त-रेणापरामृष्टो ध्यानम् ॥

अर्थात् लक्षित विषय में मन का विघ्न-बाधा-रहित लगा रहना ही ध्यान कहलाता है । विशेषता इसमें यह होगी कि साधक धारणा काल में धारणा के विषय का चिन्तन

मन की कल्पना से करता था ध्यान में वही विषय रूहानी आँखों से प्रत्यक्षवत् स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। साधक अपनी बाह्य चेतना से बिलकुल शून्य हो जायेगा। और अन्तर जगत् में लीन होकर के भीतरी दृश्यों को बराबर देखता रहेगा। योगी साधक का ध्यान जब परिपक्व हो जायेगा तब यह ध्यान ही अपने आप उस रूहानी गुरु-परमात्मा की कृपा से समाधि रूप में बदल जायेगा। समाधि का अर्थ है —

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्य-मिव समाधिः।

ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्यया-त्मकेनस्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते।

अर्थात् ध्यान ही ध्येयाकार में परिवर्तित होकर समाधि का रूप धारण कर लेता है इसमें कोई दूसरा प्रत्यय सामने नहीं आता। विशेषता केवलमात्र इतनी ही है कि ध्यान करने वाला साधक स्वयं ध्येयाकार में बदल जाता है। जैसे किसी साधक ने श्रीराम का ध्यान करना प्रारम्भ किया और वह ध्यान में दीखने लगे। कालान्तर में अभ्यास के बढ़ते-बढ़ते स्थिति इस प्रकार की सामने आ जायेगी कि साधक स्वयं को श्रीराम देखने लगेगा। वह अपने बाह्य बोध को बिल्कुल भूल जायेगा। और अन्तर जगत में अपने देवदत्त हरिदत्त बाह्य नामों को भूलकर अन्तर्जगत् में 'मैं राम हूँ' इसी का उसको बोध होगा। शनैः शनैः बढ़ते हुए समाधि की यह स्थिति आ जायेगी कि 'श्री राम' की सकल सिद्धियाँ उसके आगे-पीछे घूमने लगेंगी और वह साधक समझने लगेगा कि यह सिद्धियाँ और की नहीं प्रत्युत मेरी अपनी ही हैं। श्रीराम का चिन्तन करने वाले भक्तजन उसको अपने चिन्तक दिखाई देने लगेंगे। यही समाधि की सिद्धि है। इसी की तान्त्रिकी परिभाषा संयम कहलाती है। धारणा ध्यान और समाधि तीनों में साधक प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट होकर लक्ष्यीभूत विषय में ही स्थिर रहता है तो समझ लेना चाहिए कि उसको संयम सिद्ध हो गया। यह संयम समाधि का ही प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट शुद्ध रूप है। जो साधक लगातार दो या तीन वर्ष तक संयम का उत्कृष्ट अभ्यास कर लेते हैं तो समझ लेना चाहिए कि उन्होंने संयम पर जय प्राप्त कर ली। संयम पर जय प्राप्त कर लेने से समाधि प्रज्ञा स्वतः ही प्रगट हो जाती है अर्थात् उत्तरोत्तर समाधि प्रवाह स्वच्छ बहने लगता है। भगवान् पतंजलिदेव लिखते हैं :—

तज्जयात् प्रज्ञालोकः।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने पर प्रज्ञालोक हो जाता है या बुद्धि-प्रकाश हो जाता है। पढ़िये श्री व्यासदेवजी की पंक्तियाँ—

तस्य संयमस्य जयात्समाधिप्रज्ञाया भवत्यालोकः यथा यथा संयम-स्थिरपदो भवति तथा तथा समाधि प्रज्ञा विशारदी भवति ।

अर्थात् संयम जय हो जाने पर समाधि-प्रज्ञा का उत्कर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। संयम स्थिरपद अर्थात् पूर्णतया दृढ़ हो जाता है। स्थिति-प्रवाह बिलकुल निर्मल होता चला जाता है। अभ्यास के बल से जब साधक इस प्रकार की स्थिति को उपलब्ध कर लेता है और पूर्णतया समझ लेता है कि मेरा संयम सिद्ध हो चुका है तब वह उपलब्ध स्थिति वाला योगी अन्यान्य भूमिकाओं में संयम का उपयोग करे। श्री पतंजलि ऋषि लिखते हैं —

तस्य भूमिषु विनियोगः

इस सूत्र पर व्यास भाष्य—

तस्य संयमस्य जितभूमेर्याऽनन्तरा भूमिस्तत्र विनियोगः, नह्यजिताधरभूमिरनन्तर भूमि विलङ्घ्य प्रान्त भूमिषु संयमं लभते तदभावाच्च कुतस्तस्य प्रज्ञाऽऽलोकः, ईश्वरप्रसादाज्जितोत्तर भूमिकस्य च नाधरभूमिषु परचित्त ज्ञानादिषु संयमो युक्तः, कस्मात् तदर्थ स्यान्यत एवावगतत्वाद् भूमेरस्याद्य-मनंतरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः, कथम् एव मुक्तं —

योगेन योगो ज्ञातव्यो
योगो योगात्प्रवर्तते ।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स
योगे रमते चिरम् ॥

अर्थात् पहले-पहले योगी अपने अभ्यास बल से संयम को सिद्ध करता है तो साधक के मन का लगाव उन पहली भूमिकाओं में अधिक रहता है जिनमें अभी तक वह संयम करता रहा है क्योंकि पहली भूमिकाओं में जय प्राप्त किए बिना ज्ञानविषयक बुद्धि का प्रकाश नहीं हो पाता, कदाचित साधक यदि ईश्वर की कृपा से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त करले तो उसके बाद में निम्न श्रेणी की भूमिकाओं में उसको संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि अधः भूमियां जो परचित्त ज्ञानादि की हैं वह तो साधक को ईश्वर कृपा से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त कर लेने पर निम्न भूमिकायें स्वतः ही सिद्ध हो जाती हैं। साधक संयम कहां करेगा इसको सोचने की उसको आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि साधन के उस अपने अभ्यास से उत्तर भूमियां अपने आप ही प्रगट होती रहेंगी। क्योंकि योगशास्त्र का ऐसा नियम है कि योगिनो योगएवपाध्यायः

अर्थात् योगाभ्यासी के लिए योग ही उसका गुरु बन जाता है। साधक का तो केवलमात्र इतना रह जाता है कि वह अपने अभ्यास को बाकायदा बढ़ाता चला जाय।

ज्यों-ज्यों अभ्यास को बढ़ाता चला जायेगा त्यों-त्यों उस परम गुरु की कृपा से उत्तर भूमिकायें उसके सामने प्रगट होती रहेंगी। क्योंकि योगाचार्यों का मत है कि योग से योग को जाने। योग से ही योग बढ़ता है जो प्रमाद छोड़कर योगाभ्यास करते रहते हैं वे अवश्य ही समाधि पद को प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् पतंजलि देव ने अष्टांग योग का वर्णन किया, यथा—

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि।

किन्तु योग के इन आठ अंगों में यम-नियम आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार इन पांचों की अपेक्षा धारणा-ध्यान-समाधि अन्तरंग अंग है। किन्तु यह भी निर्बीज समाधि की अपेक्षा बहिरंग ही हैं। साधक ज्यों-ज्यों निरन्तर अभ्यास करता है त्यों-त्यों उसके चित्त में विभिन्न प्रकार के परिणाम होते रहते हैं। जिस समय योगी साधक अपना अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका चित्त जो अभी तक सर्वार्थता में लगा था वह एकाग्रता के रूप में बदल जाता है यह उस साधक के चित्त का एकाग्रता परिणाम है। साधक के चित्त का सर्वार्थता का ज्ञान शान्त हो जाता है और एकाग्रता का ज्ञान उदय हो जाता है। यही शान्तोदित प्रत्यय कहलाते हैं। इसी प्रकार से साधक का चित्त ज्योंही एकाग्रता परिणाम को खोकर समाधि परिणाम में परिवर्तित होता है त्योंही योगी के चित्त का समाधि परिणाम कहलाता है इसी प्रकार निरन्तर अभ्यास करने से समाधि परिणाम का आविर्भाव और निरोध परिणाम का आविर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार परिणित होता हुआ चित्त समाधि की सब भूमिकाओं में धर्मी बन करके परिणिति में आता रहता है। धर्मी का लक्षण भगवान् पतंजलिदेव ने अपने योग दर्शन में इस प्रकार कहा है।

शान्तोदिता व्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।

अर्थात् धर्मी वह कहलाता है जो भूत-भविष्य-वर्तमान में बराबर अनुगमन करता रहे उदाहरण के लिए इस बात को ऐसे समझना चाहिए जैसे घट-पट आदि परिणामों के अन्दर धर्मी मिट्टी कायम रहती ही चली जाती है। उदाहरणार्थ इस प्रकार समझिये— जैसे कुम्हार ने खोदकर कुछ मिट्टी ली और पानी मिलाकर उसका गोला तैयार कर लिया अब यहां पर मिट्टी धर्मी है और वह मिट्टी गोला रूप धर्म परिणाम में बदल गई। उस गोले को कुम्हार ने एक मटके के रूप में बदल दिया। अब वही मिट्टी जो गोला रूप धर्म परिणाम में परिवर्तित हुई थी अब वह मटके के रूप में बदल गई यह

उसी धर्मी मिट्टी का मटका रूप धर्म परिणाम है। मटका पका लिया गया फिर उसको तोड़-फोड़कर ठिकरा बना लिया गया। मिट्टी घड़े में भी मौजूद थी और ठिकरों में भी, केवल उसके परिणामान्तर होते रहे। जब मिट्टी मटके के रूप में आई थी तब उसका नया मटका पुराना मटका कहकर अवस्था परिणाम था। लम्बे गले का मटका आदि-आदि लक्षण परिणाम था। इन तीनों परिणामों के अन्दर मिट्टी धर्मी रूप से सभी जगह कायम रही उसमें कोई अन्तर नहीं आया चाहे वह मटका बनी कसोरा बनी ठीक कर बनी ठिकरा टूट जाने के बाद मिट्टी का चूरण बन गया। मिट्टी वही मिट्टी रूप में आ गई। इसी प्रकार से हमारे चित्त में एकाग्रता परिणाम समाधि परिणाम एवं निरोध आदि परिणाम हुए, धर्मी चित्त अपने विभिन्न परिणामों में अन्यान्य एकाग्रता आदि धर्मों के अन्दर परिवर्तित होता रहा। केवलमात्र निर्बीज समाधि के अन्दर जाकर जड़-चेतन की गाँठ टूट जाने पर आत्मा केवली भाव को प्राप्त हो जायेगा और चित्त उससे अलग होकर उसका गुणों में अवस्थान हो जायेगा चित्त का एक क्रम से दूसरे क्रम में बदल जाना ही परिणामान्तर का हेतु है। ज्यों-ज्यों साधक अपने अभ्यास को बढ़ाकर विवेक ज्ञान को निर्मल कर लेता है तब उसके चित्त में सभी कुछ ग्रहण कर लेने की योग्यता बढ़ जाती है। वह जहाँ जहाँ अपने चित्त को संयमित करता है वहाँ वहाँ का ज्ञान तत्काल प्राप्त कर सकता है। अब योगी की इच्छा है कि वह अपने सधे हुए चित्त को कहाँ-कहाँ लगायेगा, उसने प्रकृति का कितना अध्ययन करना है। कितनी प्रकार की सिद्धियों को उपार्जित करना है। जिस प्रकार से एक अध्ययन करने वाले छात्र ने पढ़ते पढ़ते अपने बुद्धि बल को इतना बढ़ा लिया है कि वह जिस विषय को पढ़ना आरम्भ करता है उसको उसकी बुद्धि तत्काल ग्रहण कर लेती है। और वह थोड़े से समय में उस विषय का भी विद्वान बन जाता है यदि वही विषय किसी अनपढ़ गंवार के सामने कहा जाय तो उसकी बुद्धि उस विषय को बिलकुल भी ग्रहण न कर पायेगी, और न वह यह समझ पायेगा कि उसको क्या कहा जा रहा है। यह तो है बाह्य कोष के अध्ययन की बात। योगी भीतर की पढ़ाई पढ़ता है उसने भीतरी विज्ञान का अध्ययन करके अपनी रूहानी शक्तियों को प्राप्त करना है, और अपने आपको पूर्ण युक्त योगी बनाना है। युक्त योगी का लक्षण श्री मद्भगवद्गीता में अखिल आत्मा भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा है—

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा
कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी
सम लोष्ठाश्मकांचनः।

युक्त योगी का लक्षण अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण बतलाते है कि जो योगी अपने संयम के आधार पर प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर उन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं वे लोग ज्ञान तृप्तात्मा बन जाते हैं। ऐसे योगी पंच महाभूतों पर विजय प्राप्त करके भूत जयी होकर पंच महाभूतों पर पूर्ण अधिकार रखते हैं। उनके शरीर पर पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश अपना किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं डालते प्रत्युत योगी अपने मनोबल से भूत जयी होकर अपने शरीर में जैसे भी परिणाम पैदा करना चाहे कर लेता है। यह तो रही प्रकृति पर अधिकार की बात, इसके अतिरिक्त अपने विकास की ओर बढ़ता हुआ योगी शीघ्राति-शीघ्र आत्मबल से पूर्ण होकर प्रचण्ड भास्कर की तरह चमकने लगता है। अब उसका आत्म विज्ञान पर पूरा अधिकार है वह विकार रहित स्थिति में पहुंच गया है। इन्द्रियां पूरी-पूरी नियन्त्रण में हैं। ऐसे योगी की दृष्टि में लोहा-सोना-पत्थर सब सामान्य हैं वह किसी के, किसी प्रकार के प्रलोभन मे नहीं आता। क्योंकि वह आत्मिक कोष को पूर्णरूपेण प्राप्त कर चुका है। उसके लिए कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है। वह सब प्रकार से परिपूर्ण युक्त योगी है। प्रकृति के जिस प्रकार के ऐश्वर्य को वह प्राप्त करना चाहे तो क्षणमात्र के चिन्तन से ही प्राप्त कर सकता है। योगदर्शन के विभूतिपाद में योगियों को प्राप्त कुछ विभूतियों का वर्णन किया गया है। संयम सिद्ध योगी अपने संयम के बल से संयम करके किन-किन सिद्धियों को प्राप्त कर लिया करता है इसका थोड़ा-सा उल्लेख इस लेख के उपसंहार में कर देना ही उचित समझता हूं। इससे आगे के लेखों में मैं समझता हूं और भी इन विभूतियों को खोलकर बतलाया जाय जिससे पाठक-गण अपने मनोबल को बढ़ाकर अपने आत्म-धन से धनी बन जायें। भगवान पतंजलिदेव चित्त के तीन परिणामों मे संयम करने का दिग्दर्शन कराते हैं :—

परिणाम त्रय संयमादतीतानागतज्ञानम्

योगी जिस समय चित्त के धर्म-लक्षण-अवस्था आदि के स्थानों में संयम करता है तो उसको अतीत और अनागत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। व्यास भाष्य की वार्तिक पढ़िये—

धर्मलक्षणावस्थापरिणामेषु संयमाद् योगिनाम् भवत्यतीतानागतज्ञानम् धारणा ध्यान समाधि त्रयमेकत्र संयम उक्तः, तेन परिणामत्रयं साक्षात् क्रियमाणमतीता-नागतज्ञानं तेषु संपादयति।

अर्थात् धर्मी चित्त के अनेकों धर्म परिणाम होते रहे अब ये धर्मी चित्त इस समय एकाग्रता परिणाम वाला है क्योंकि इसकी प्रकृति शान्त दिखलाई देती है, यह चित्त का

लक्षण परिणाम है। यह चित्त बहुत पुराने समय से एकाग्रता को प्राप्त हुआ है और इसकी अवस्था उत्तरोत्तर ज्ञान मय है यह चित्त का अवस्था परिणाम कहा जाता है। जिस समय योगी चित्त के इन तीन परिणामों के अन्दर संयम करता है तो उसको भूत भविष्य का ज्ञान होने लगता है। चित्त की निर्मलता एवं अभ्यास के बल से चित्त के अवशेष धर्मों को जो उसमें वर्तमान रहे है जाना जाता है। यह तो रही योगी के आत्म विकाश की शक्ति—वैसे लोक में भी चित्त के लक्षणों को पहचान करके भली प्रकार से जान जाते है कि उसके मन में क्या छुपे हुए भाव है। जैसा कि नीतिशास्त्र में कहा गया है।

आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणे न च।
नेत्रवक्त्र विकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गतं मनः ॥

अर्थात् आकृति से इंगितों से चलने-फिरने की गतों से हरकतों से अन्तर्गत मन का ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान तो साधारण व्यक्ति को भी हो ही आया करता है, किन्तु चित्त शुद्धि से होने वाला ज्ञान परम शुद्ध भ्रान्ति रहित शुद्ध ज्ञान होता है। वही ज्ञान सिद्धियों का रूप धारण कर लेता है। इस छोटे से लेख में हमने संयम का प्रकार समझाकर योगी को होने वाले अतीत अनागत ज्ञान को समझाया पढ़ने वाले साधक गण इस लेख को पढ़कर यदि अपने आत्मिक कोष को प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे तो बहुत ही भला होगा।

दिव्य-श्रवण

समस्त प्राणियों की कर्णेन्द्रिय का आधार आकाश है और सम्पूर्ण शब्दों का भी आधार आकाश ही है ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है। एक स्थल पर उच्चारित शब्दों का सुनना सर्वत्र पाया जाता है और यही आकाश का चिह्न है अर्थात् बिना आकाश के शब्द का कर्ण इन्द्रिय में प्रवेश करना ही असम्भव है और इसी से आकाश का आवरण रहितत्व भी सिद्ध होता है वैसे ही जो पदार्थ अमूर्त अर्थात् रूप रहित है उसकी सर्व-व्यापकता भी प्रसिद्ध है किन्तु शब्द के ग्रहण करने का निमित्त कर्ण ही है क्योंकि बहरा और सुनने वाला इन दोनों में से एक शब्द के ग्रहण करता है और दूसरा नहीं करता इसलिये कर्ण ही शब्द का विषय है कर्णेन्द्रिय और आकाश का जो सम्बन्ध है उसमें संयम करने से दिव्य-श्रवण होता है।

— भगवान व्यास

बुद्धि की महिमा

[श्री सान्निगुरु]

भारतीय संस्कृति में अन्धश्रद्धा के लिए स्थान नहीं है। वहाँ सर्वत्र विचारों की महिमा गाई हुई दिखाई देगी। वेद भारतीय संस्कृति के आधार माने जाते हैं। लेकिन वेद का अर्थ क्या है ? वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान भारतीय संस्कृति का आधार है। यह भव्य संस्कृति ज्ञान के आधार पर बनाई गई है।

वेद कितने है ? वेद अनन्त हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, केवल इतने ही वेद नहीं है। भारतीय संस्कृति का केवल इतने ही वेद नहीं हैं। भारतीय संस्कृति का केवल एक ही ऋषि नहीं है, एक ही पैगम्बर नहीं है, एक ही वेद नहीं है। भारतीय संस्कृति आकाश की भाँति विशाल और सागर की भाँति अपार है।

जीवन को सुन्दर बनाने वाला प्रत्येक विचार ही मानो वेद है। आयुर्वेद बतायेगा कि हम अपना जीवन किस प्रकार आनन्दपूर्ण व उत्साही बना सकेंगे। धनुर्वेद बतायेगा कि समाज की रक्षा किस प्रकार की जानी चाहिए। समाज का मनोरंजन कैसे किया जाय, समाज के दुःखों को कैसे भुलाया जाय, यह बात गान्धर्व वेद बतायेगा। ये सब वेद बतायेगा। ये सब वेद ही है।

काल अनन्त है और ज्ञान भी अनन्त है। नये-नये ज्ञान का उदय होगा और भारतीय संस्कृति सबसे पहले उसका सत्कार करने के लिए खड़ी रहेगी। भारतीय संस्कृति ज्ञानसे अधिक पवित्र किसी को नहीं मानती। भारतीय संस्कृति में ज्ञानोपासकों के लिए अत्यन्त आदर की भावना है।

एक ही समय सारे ऋषि हुए, यह बात भारतीय संस्कृति कभी भी नहीं मानेगी। ऐसा कहना अहंकार है। वह परमेश्वर का अपमान है। यदि सारा ज्ञान समाप्त हो गया तो फिर सृष्टि के अस्तित्व की कुछ जरूरत नहीं। बस दाना पड़ा कि ज्वार काटना ही शेष रह जायेगा। उसी प्रकार यदि शोध के लिए कुछ नहीं रहे तो फिर मनुष्य की उत्पत्ति का भी कोई अर्थ नहीं रहेगा।

नवीन-नवीन विचार पैदा होते हैं, नया-नया ज्ञान हमको मिलता है। यूरेनस व नेप्च्यून पहले नहीं दिखाई देते थे। अब वे दिखाई देने लगे हैं। खगोल में जिस प्रकार नये-नये तारे दिखाई देते हैं, उसी प्रकार जीवन के शास्त्र में भी नवीन-नवीन विचार

उत्पन्न होते हैं। यदि वास्तव में देखा जाय तो कह सकते हैं कि दूसरे सारे शास्त्रों की अपेक्षा यह जीवन-शास्त्र बिल्कुल प्रयोगावस्था में है। इस जीवन के शास्त्र में अभी कुछ भी निश्चित नहीं है। रेखागणित में कुछ स्वयंसिद्ध, शंकातीत, संशयातीत तत्त्व हैं। हम पृथ्वी में कहीं भी क्यों न जायं, गणित-शास्त्र के इस सिद्धान्त में कि दो और दो चार होते हैं कोई अन्तर नहीं होता। लेकिन यह नहीं मान सकते कि जीवन के शास्त्र में कोई एक भी तत्त्व इस प्रकार का है। यह बात अपवादरहित निश्शंक होकर नहीं मान सकते। सत्य अच्छा है या बुरा, अहिंसा उचित है या अनुचित, ब्रह्मचर्य रखें या न रखें, इनका निश्चित उत्तर अब भी मानवी मन नहीं दे पाता है।

ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति किसी बात का आग्रह नहीं करती। "बुद्धेः फलमनाग्रहः" बुद्धिमान मनुष्य किसी भी तत्त्व के लिए आग्रह नहीं रखेगा। श्रीकृष्ण ने अन्त में अर्जुन को यह कहकर कि "यथेच्छसि तथा कुरु" उसकी बुद्धि को महत्त्व दिया है। वेद धर्म का अर्थ है विचार के अनुसार आचार करना। जैसा बुद्धि कहे वैसा आचरण करना। भारतीय संस्कृति कह रही है—'मेरे उर के ज्ञान-दीप को बुझा न देना स्वामी।' देखो, तुम्हारे स्वयं के हृदय में बुद्धि क्या कहती है। जो निश्शंक आवाज सुनाई दे, उसी के अनुसार आचरण करो। "मनः पूतं समाचरेत्", इसका यही अर्थ है। इसलिए नहीं कि अमुक ऋषि कहते हैं, इसलिए नहीं कि अमुक तत्वज्ञानी कहते हैं; लेकिन तुम्हारे मन को जो अच्छा लगे, वही तुम करो। अपनी आत्मा का अपमान मत करो। अपनी बुद्धि का गला मत घोटो।

'वेद अपौरुषेय हैं' आदि कल्पनाएँ भ्रामक हैं। यह सब मानवी बुद्धि का प्रसार है। वेद को मानना मानो बुद्धि को ही मानना है। वेद में सबसे अधिक पवित्र मन्त्र है गायत्री मन्त्र का इतना महत्त्व क्यों है? इस मन्त्र की उपासना करने से मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। इस मन्त्र में ऐसी क्या बात है? इस मन्त्र में बुद्धि की निर्मलता के लिए प्रार्थना की गई है।

हम तेजस्वी प्रेरणा देने वाले सूर्य के अत्यन्त श्रेष्ठ तेज की उपासना करते हैं। यह सूर्य हमारी बुद्धि को तीव्र बनाता है। विश्वामित्र ऋषि ने भगवान् से अपने समाज के लिए निर्मल बुद्धि मांगी। वेद में भगवान् से 'गायें दे, पुत्र दे, धन दे' आदि सैकड़ों याचनाएँ की गई हैं। लेकिन उन सारे मन्त्रों की अपेक्षा यह छोटा मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ सिद्ध हुआ। इससे यह प्रकट हो जाता है कि भारतीय पूर्वज किस वस्तु को सबसे ज्यादा महत्त्व देते थे।

मनु ने एक स्थान पर स्पष्ट रूप से कह दिया है कि यदि मेरी बातें तर्कसंगत हों तो

मानो, नहीं तो छोड़ दो। शंकराचार्य कहते हैं कि यदि सैंकड़ों श्रुति भी आकर यह कहें कि अग्नि ठण्डी है तो उसको कौन महत्त्व देगा? प्राचीन ऋषि कहते हैं कि तर्क की कसौटी पर कसने के बाद जो खरा उतरे, उसी ज्ञान-धन को पूज्य समझो।

महाभारत में भीष्म से प्रश्न किया गया है—"कोऽयं धर्मः कुतो धर्मः ?" यह धर्म कहाँ से आता है? क्या ईश्वर आकर कान में यह धर्म कह जाता है? भीष्म ने कहा कि विचारशील लोग चिन्तन एवं अध्ययन करके इस धर्म का निर्माण करते हैं।

"मतिभिरुद्धृतम्," वे अपनी-अपनी बुद्धि से तत्त्व की खोज करते हैं। वेद-धर्म का अर्थ है विचार-धर्म। वेद-धर्म का अर्थ है बुद्धि-प्रधान धर्म। एक श्रुति की बात दूसरी श्रुति को ही नहीं जँचती। एक स्मृति की बात दूसरी स्मृति से मेल नहीं खाती। एक ऋषि का कथन दूसरे ऋषि को स्वीकार नहीं होता। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यही है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्ररूप से विचार करता था। उनके कालों में जैसी-जैसी स्थिति थी उसी के अनुसार वे विचार करते थे। वे तेजस्वी गायत्री मन्त्र की उपासना करने वाले थे। पद-पद पर वे सुधार करते थे। उनको 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' से बहुत चिढ़ थी। वे चर्चा करते थे। सभा करते थे। शान्तिपूर्वक ज्ञान-चर्चा करते थे।

यदि प्राचीन काल पर ऊपर-ऊपर से ही साधारण दृष्टि डालें तो विचारों का एक जबरदस्त आन्दोलन दिखाई पड़ेगा। भास्कराचार्य के केवल निरुक्त को ही देखें तो वेदान्त के अध्ययन के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टियों वाले सैंकड़ों मण्डलों के नाम आये हैं। इति नैरुक्तिकः, इति आख्यायिकः, इति ऐतिहासिकः, इस प्रकार के भिन्न-भिन्न अध्ययन मण्डलों के नाम यास्क ने दिये हैं। इसी प्रकार उपनिषद्-काल में सर्वत्र तत्वज्ञान की अखण्ड एवं जबरदस्त चर्चा चलती हुई दिखाई देती है। सैंकड़ों मत, सैंकड़ों पन्थ और सैंकड़ों सूक्ष्म भेद वाले तत्वज्ञानी हमें दिखाई देते हैं। वे खुले दिल से वाद-विवाद करते हैं। यदि बात जँच जाती है तो उसे स्वीकार कर लेते हैं, उसके अनुसार आचरण करने लगते हैं। इस प्रकार की बातें वहां दिखाई देती हैं। वे निश्शंकता से और निर्भयता से अपने विचार उपस्थित करते थे। लोग उस चर्चा को सुनने के लिए इकट्ठे होते थे।

मीमांसक ईश्वर को नहीं मानते थे। चार्वाक पन्थी परलोक आदि को नहीं मानते थे। कणाद आदि कहते थे कि सारी सृष्टि परमाणुओं से बनी है। बुद्ध के अनुयायी यह मानते हैं कि सब क्षणिक हैं। इस प्रकार सैंकड़ों मत थे, लेकिन किसी को भी सताया नहीं गया। यूरोप के नये विचार देने वालों की होली, जला दी गई। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ। यहां प्रत्येक व्यक्ति के प्रामाणिक मत का मान किया गया।

ज्ञान कोई लड़कपन नहीं समझा जाता था। एक-एक बात समझने के लिए तपस्या की जाती थी। उपनिषद् में अनेक स्थानों पर यह दिखाया गया है कि ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करके किस प्रकार तपश्चर्या की जाती थी, किस प्रकार चिन्तन में मग्न हो जाया जाता था। ज्ञान-प्राप्ति के लिए वे किसी के भी पास चले जाते थे। ब्राह्मण क्षत्रिय के पास जाता था, क्षत्रिय ब्राह्मण के पास जाता था। ब्राह्मण तुलाधार जैसे वैश्य के पास ज्ञान के लिए नम्रता पूर्वक जाता था। ज्ञान कहीं भी हो, वह पवित्र है। सूर्य का प्रकाश कहीं से आए उसे तो लेना ही चाहिए। वृक्ष की जड़ जहां भी हों वहां से नमी लेने का प्रयत्न करती हैं। इसी प्रकार की दृष्टि ज्ञानोपासकों की होनी चाहिए। देवताओं का कच दैत्यों के गुरु के पास भी जाता था और देवताओं का गुरु भी शत्रु की ओर के शिष्यों को प्रेम से सारा ज्ञान देता था। ज्ञान के प्रान्त में कोई शत्रु-मित्र नहीं है।

नचिकेता ने प्रत्यक्ष मृत्यु से भी ज्ञान की भिक्षा मांगी। इससे अधिक ज्ञान का महत्त्व और क्या हो सकता है? ज्ञान के लिए मृत्यु के पास भी जाना पड़ेगा। ज्ञान किसी से भी नहीं डरता। ज्ञान की इच्छा रखने वाला तीनों लोकों में जायेगा और उसके लिए जो भी आवश्यक होगा, करने के लिए तैयार रहेगा।

समाज को नव-विचार देना मानो एक महान साधना ही है। समाज को विचार-रूपी आंख देने से बढ़कर और क्या हो सकता है? चिन्तन के बाद जो विचार सूझे उसे पूज्य मानकर हमेशा प्रकट करना चाहिए। उसको बढ़ाते रहना चाहिए। उसको सबके सामने निर्भयता पूर्वक रखना चाहिए। उसको छोड़ना नहीं चाहिए।

ज्ञान का बाह्य स्वरूप कोई भी हो यह देख लेना चाहिए कि उन बाह्यांगों की पूजा करने के लिए निस्स्वार्थी रूप से किस प्रकार प्रयत्न करता है। ज्ञान का बाह्यांग व्याकरण होगा। व्याकरण-रूपी परब्रह्म की कोई पाणिनि दिनरात पूजा करना चाहेगा? भारतीय संस्कृति उस पाणिनि को 'भगवान' का पद दे देगी।

शंकराचार्य पाणिनि का उल्लेख हमेशा 'भगवान पाणिनि' कहकर करते हैं। पाणिनि ज्ञान के एक स्वरूप में रम गए। उनको दूसरी-तीसरी कोई बात सूझती ही नहीं थी, पसन्द नहीं आती थी। व्याकरण ही मानो उनका वेदान्त था। उनके पास जो भी आता वे उसे व्याकरण सिखाते। एक दिन जब वे तपोवन में व्याकरण सिखा रहे थे कि एकाएक बाघ आया। बाघ को देखकर पाणिनि नहीं भागे। बाघ को देखकर वे व्याघ्र शब्द की व्युत्पत्ति बताने लगे। बाघ सूँघता-सूँघता आ रहा था। पाणिनि बोले—"इस सूँघते-सूँघते आने वाले बाघ को देखो। व्याजिघ्रति स व्याघ्रः।" पाणिनि व्युत्पत्ति समझाने के आनन्द में मग्न थे। लेकिन शिष्य कब के ही भाग गए थे। बाघ ने झपटकर पाणिनि को खा डाला। ज्ञान की कितनी बड़ी उपासना है। ज्ञान का उपासक सब कुछ भूल जाता है। वह उन विचारों में तन्मय हो जाता है। मानो उसकी समाधि ही लग जाती है। समाधि का अर्थ है सर्वत्र ध्येय का ही साक्षात्कार करना। समाधि का अर्थ है ध्येयेतर सृष्टि का विस्मरण। समाधि का अर्थ सारी सृष्टि का विस्मरण नहीं है।

ज्ञान का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, उसके पीछे-पीछे जाकर उसके अन्तिम छोर पर जो पहुंच जाता है, जो परमोच्च स्थान प्राप्त कर लेता है, वही ऋषि है। जिसकी दृष्टि पैसे पर या सुख पर होती है वह कभी भी इस प्रकार के फन्दे में नहीं पड़ेगा। तपस्वी ही ज्ञान प्रदान करता है। चाहे ज्ञान हो चाहे विज्ञान, उसे प्राप्त करने के लिए—जीवन में उतारने के लिए—महात्मा ही मरते रहते हैं। ज्ञानोपासक निरन्तर आगे बढ़ता रहेगा। बिना ज्ञान-देवता के दर्शन किये वह नहीं रुकेगा। जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों में बहुत-से अनुसन्धानों की गुंजाइश है। भारतीय संस्कृति उन सब अनुसन्धान-कर्ताओं का सम्मान करने के लिए तैयार है। ज्ञान-अनुसन्धान में खाना-पीना सब कुछ भूल जाने वाला न्यूटन ऋषि ही था। ५० वर्ष तक अध्ययन, मनन करके नई दृष्टि देने वाला कार्ल मार्क्स महर्षि ही था। संसार के विचारों में क्रान्ति करने वाले चार्ल्स डारविन को कौन ऋषि नहीं कहेगा? इंग्लैण्ड में एक झोंपड़ी में रहकर सहयोग के नये मार्ग संसार को दिखाने के लिए प्रयत्न करने वाला निर्वासित महान् क्रोपाटकिन को यदि ऋषि न कहें तो फिर क्या कहें?

भारतीय संस्कृति सबकी पूजा करेगी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्व-भारती विद्यापीठ खोलकर यह दिखा दिया है कि भारत संसार के ऋषियों की अपने ढंग से पूजा

कर रहा है। वे संसार के बड़े-बड़े आचार्यों को वहां बुलाते थे और उनका सम्मान करते थे। रवीन्द्रनाथ भारतीय संस्कृति की आत्मा को पहचानते थे। वे भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक थे।

भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि परमेश्वर का स्वरूप ही मूलतः ज्ञान है। परमेश्वर की ब्रह्म की व्याख्या क्या है? "ज्ञानं ब्रह्म", ज्ञान का अर्थ ही है परमेश्वर। ईश्वर की इससे बड़ी व्याख्या संसार में और किसी ने नहीं की। ईश्वर की उपासना करना ही मानो ज्ञान की उपासना-करना है। अनन्त रूपों में ज्ञान की उपासना करना। चाहे समाज-शास्त्र हो, खगोल-शास्त्र हो, भूगोल हो, इतिहास हो, आयुर्वेद हो, तत्वज्ञान हो, योग हो, कर्म-योग हो, गणित हो, संगीत हो, ये सब ज्ञानरूपी परमेश्वर की पूजा ही है। एक ही ज्ञान-सूर्य की ये अनन्त किरणें हैं। महाभारत के श्लोक के समान ही गणित की प्रश्नमाला भी पूज्य है श्रुति-स्मृति के बराबर अध्ययन के ही सृष्टिशास्त्र का अध्ययन भी पवित्र है। सनातन धर्म की इस महान् दृष्टि को हमें फिर से अपनाना चाहिए। सर्वोच्च बौद्धिक विकास की ज्वाला हमें फिर से प्रज्वलित करनी चाहिए। तभी भारतीय संस्कृति नये तेज से सुशोभित होगी।

ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग

मनुष्यों का कल्याण करने के लिये अधिकारि भेद से तीन प्रकार के योगों का उपदेश किया है। वे हैं- ज्ञान, कर्म और भक्ति। मनुष्य के परम कल्याण के लिये इनके अतिरिक्त और कोई उपाय कहीं नहीं है। जो लोग कर्मों तथा उनके फलों से विरक्त हो गये हैं और उनका त्याग कर चुके हैं, वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं। इसके विपरीत जिनके चित्त में कर्मों और उनके फलों से वैराग्य नहीं हुआ है, उनमें दुःखबुद्धि नहीं हुई है, वे सकाम व्यक्ति कर्मयोग के अधिकारी हैं। जो पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त है और न अत्यन्त आसक्त ही है तथा किसी पूर्व जन्म के शुभ कर्म से सौभाग्यवश मेरी लीला-कथा आदि में उसकी श्रद्धा हो गयी है, वह भक्ति योग का अधिकारी है। उसे भक्तियोग के द्वारा ही सिद्धि मिल सकती है।

— श्रीमद्भागवत्

वृत्ति-साक्षात् और योग

[श्री ओमप्रकाश पालीवाल]

जहाँ जिस-जिस जगह सुख मालूम होता है, हमारा चित्त वहाँ-वहाँ दौड़ता रहता है। इसके विपरीत जहाँ दुःख मालूम होता है, चित्त वहाँ नहीं दौड़ता। जहाँ भी सुख मालूम हो, चाहे भ्रान्ति ही सही, चित्त वहाँ दौड़ता है। जैसे पानी गड्ढों की तरफ दौड़ता है, ऐसे ही चित्त सुख की तरफ दौड़ता है। दुःख के पर्वत पर चित्त नहीं चढ़ता, सुख की झीलों की तरफ भागता है। चाहे वे झील कितनी ही मृग-मरीचकाएँ क्यों न हों, चाहे पहुँचकर झील पर पता चले कि वहाँ कुछ भी नहीं है, न झील है न गड्ढा है, न पानी है। लेकिन जहाँ भी चित्त को दिखाई पड़ता है सुख चित्त वहीं दौड़ता है। चित्त की दौड़ सुखोन्मुख है और दौड़ जब तक है तब तक चित्त विश्राम को उपलब्ध नहीं होता, तब तक तो वह सुख प्राप्ति के श्रम में ही जुटा रहता है। एक सुख से जैसे ही मुक्त हो पाता है, अर्थात् जैसे ही उसे पता चलता है कि यह सुख, सुख नहीं है, चित्त तत्काल दूसरे सुखों की ओर दौड़ने लगता है। दौड़ जारी रहती है चित्त का जीवन केवलमात्र दौड़ ही है। जिस दिन चित्त की दौड़ पूर्णतः उपराम हो जायेगी उसी दिन चित्त की मृत्यु हो जायेगी। क्योंकि चित्त की स्थिति करीब-करीब साईकिल चलने जैसी है साईकिल के जब तक पैंडिल चलाते हैं, साईकिल चलती रहती है; पैंडिल बन्द होते ही साईकिल रुक जाती है। साईकिल को चलाना जारी रखना हो तो पैरों का चलते रहना जरूरी है। चित्त का चलना जारी रखना हो तो सुखों की खोज जारी रखना जरूरी है। जिस दिन आपको ऐसा लगने लगे कि सुख कहीं नहीं है तो चित्त विश्राम में आना शुरू हो जाता है।

जब तक सुख का आभास बना रहेगा तब तक चित्त बाहर ही दौड़ता रहेगा। संसार दुःखालय है ऐसा साक्षात्कार न हो तब तक चित्त उपराम में न आ सकेगा। यह चित्त आपके ही सहयोग से भटकता है जिस दिन आपका सहयोग टूटा कि चित्त की गति रुकी। हम जीवन में नित्य दुख का अनुभव करते हैं लेकिन हम दुख से छूट नहीं पाते, इसका कारण है कि दुःख सहने का भी हमें अभ्यास पड़ जाता है और अभ्यास में आया दुःख दुःख नहीं मालूम पड़ता। उदाहरण के लिए हमने क्रोध किया, और परिणामस्वरूप दुःख पाया कष्ट पाया

लेकिन उससे हमने यह निष्कर्ष नहीं लिया कि क्रोध दुःख है। पुनः क्रोध होता है लेकिन दुबारा क्रोध से दुःख का जो आघात है, मन उसके लिए तैयार हो जाता है। और कम दुःख मालुम पड़ता है। और इस प्रकार करते-करते अभ्यास इतना गहरा हो जाता है कि दुख की प्रतीति ही क्षीण हो जाती है।

अगर आप दुर्गन्ध के पास बैठे रहते हैं— एक दफा, दो दफा, तीन, दफा धीरे-धीरे नाक की संवेदना क्षीण हो जायेगी और दुर्गन्ध की खबर मिलनी बन्द हो जायेगी। अगर आप शोरगुल में जीते हैं तो पहले खबर देगा मन कि बहुत शोरगुल है, फिर धीरे-धीरे खबर देना बन्द कर देगा। संवेदनशीलता कुण्ठित हो जायेगी। ऐसा भी हो सकता है कि फिर बिना शोरगुल के बैठना आपको मुश्किल हो जाये।

हम अपने मन से दो ही स्थितियाँ पैदा कर पाते हैं, अभ्यास गलत का, क्योंकि हम गलत करते हैं, उसका अभ्यास होता है। और दूसरा कुशलता, का और भी कुशल हो जाते हैं, वही करने में। लेकिन जो निष्पत्ति लेनी चाहिए, वह हम कभी नहीं लेते।

हम स्वयं नहीं तो दूसरों को नित्य दुःख से पीड़ित देखते हैं। लेकिन हमारे ऊपर जब अपने ही दुःख का असर नहीं पड़ता तो दूसरों का क्या पड़ेगा। महात्मा बुद्ध को मुर्दा दिखाई पड़ा, और बुद्ध ने अपने सारथी से पूछा कि इसे क्या हो गया है? सारथी ने जवाब दिया, यह आदमी मर गया है। तो बुद्ध ने तत्काल पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊँगा। इधर हम और आप नित्य ही मुर्दों को देखते हैं, देखते ही नहीं कन्धा देकर फूंक आते हैं, और चर्चा का विषय होता है? बड़ा बुरा हुआ, इसके बच्चों का क्या होगा। पत्नी का क्या होगा? अभी तो उम्र न थी मरने की आदि-आदि। वृद्ध अवस्था के प्राणियों से नित्य आपका मिलन होता है होता ही नहीं आपके घर में भी कोई न कोई वृद्ध होंगे ही तो क्या आपने किसी से पूछा कि क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा?

जिस दिन आपको इस आदि सत्य का पता चल जायेगा कि संसार में दुःख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, तो आप संसार के अतिक्रमण की चेष्टा में संलग्न हो जायेंगे। क्योंकि दुःख के बीच कोई भी विश्राम को उपलब्ध नहीं हो सकता। दुःख के साथ ठहरना असम्भव है। दुःखी व्यक्ति जीवन के छलाँग लगाने की कोशिश करता है।

सुख की खोज ही संसार में भोगी जीवन है और दुःख से मुक्ति की खोज योगी जीवन है। योगी दुःख से जीवन को मुक्त करके परमानन्द को प्राप्त होता है और संसारी भोगी सुख में आसक्त हो दुःख को पाता है

आनन्द प्राणमात्र का स्वभाव है। सिर्फ अपने मूल स्वभाव से व्यर्थ के कूड़े को हटा देना है ताकि जो स्वभाव है, वह प्रगट हो जाये।

घर में आग लगने पर आप उपाय खोजते हैं बाहर निकलने का ! उसके लिए, आप न तो शास्त्र पढ़ते है, न आप ईश्वर से प्रार्थना करते हैं घर में आग की प्रतीत होते ही आप उपाय सोचते है। सोचते ही नहीं बल्कि छलांग लगाकर बाहर घर से हो जाते हैं। जैसे ही यह प्रतीति हुई कि घर में आग लगी है, तो आपकी पूरी चेतना संलग्न होकर उपाय खोज लेगी लेकिन हमें लगता ही नहीं कि घर जल रहा है हां कोई महात्मा कहता है तब लगता है कि महाराज आप ठीक कहते हैं। लेकिन वह दूसरों का अनुभव हमारे किसी काम का अनुभव नहीं जब तक कि स्वयं को प्रतीति न हो।

दुःख से मुक्ति पाने का योग के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। संसार में योग ही एकमात्र साधन है जिससे प्राणिमात्र दुःख से मुक्ति पा सकता है। योग से सुख नहीं मिलेगा। जो लोग योगी के पास सुख की खोज में आते हैं वे गलत समझते हैं। आपको दुःख की अति अन्त प्रतीति होने लगे तो योगी की तलाश करें। योग से दुख से मुक्ति मिलेगी। हम योग को भी अपने सांसारिक चित्त की दौड़ के लिए एक साधन समझते हैं। हम चाहते हैं योग से धन मिलेगा, संसार मिलेगा आदि-आदि। लेकिन योग चित्त का साधन नहीं है समाधान है। जो चित्त को ही समाप्त कर देता है। न रहता है बांस और न बजती है बांसुरी।

चित्त वृत्ति साक्षात् का मतलब है चित्ति-वृत्ति को समझना। समझने से वृत्ति निरुद्ध हो जाती है। अगर कोई क्रोध वृत्ति को समझले कि क्रोध क्या है, तो सिवाय दुःख और आग के पायेगा क्या ? अगर क्रोध के रूप को कोई पूरा देखले तो सिवाय जहर के और क्या मिलेगा। हम सब जानते हैं कि क्रोध बुरा है फिर भी हम क्रोध किये जाते हैं। इसका मतलब साफ है कि आप क्रोध के विषय में कुछ भी नहीं जानते। आपको भीतर से तो यही मालूम है कि क्रोध अच्छा है ऊपर से सुन रखा है कि क्रोध बुरा है। यह आपका अनुभव, आपकी प्रतीति नहीं है। आपका अपना साक्षात्कार नहीं है जिस दिन क्रोध से आपका अपना साक्षात्कार हो जायेगा, उसी दिन से जीवन से क्रोध विदा हो जायगा। यही बात काम, और लोभ के विषय में है।

किसी भी वृत्ति का शुद्धतम साक्षात्कार हो जाय तो चित्त निरोध अवस्था को प्राप्त हो जायेगा। लेकिन मनुष्य की संस्कृति ने इतने जाल रचे हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी

भी वृत्ति का शुद्ध साक्षात्कार नहीं कर पाता। न तो कामवासना का साक्षात्कार कर पाता है। क्रोध का, न लोभ का न भय का। इसी कारण इनसे हमारा छुटकारा नहीं हो पाता।

आप अपने से भागकर कहीं जा नहीं सकते जो भी आपके भीतर है, उसे पूरी तरह जीयें। आप भीतर से बुरे हैं तो बाहर भी वैसे ही जियें इस बुरे मन के ऊपर कोई मुलम्मा न लगायें वही सुसंस्कृति है जहाँ हमारे भीतर जो है, हम वही होने के लिए स्वतन्त्र हैं। और अगर यह हो सके, अगर यह आप कर पायें तो आपको अपने भीतर के असली रूप में जीने का अवसर मिलेगा, और तब आप पायेंगे कि वह असली रूप है दुःख है।

वृत्ति-साक्षात् का अनुभवजितना गहरा होगा उसी अनुपात में वृत्ति निरोध होगा। गहरी अनुभूति में वृत्ति सारूप्यता असम्भव हो जाती है वृत्ति साक्षात्कार होने पर ही चित्त मुक्तावस्था को उपलब्ध हो जाता है। ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है। वृत्ति का अनुभव के रूप में ज्ञान हो जाने पर चित्त वृत्तियों से मुक्त होकर अपने स्वरूप में ठहर जाता है, और उस अवस्था में वह अपनी आत्मा को जानता है।

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति ॥

अधिक आहार, प्रयास, अधिक बोलना, नियमों का ग्रहण, लोगों का साथ, चंचलता, इन छै चीजों से योग नष्ट हो जाता है। भूख से अधिक भोजन करने को अत्याहार कहते हैं किसी कार्य विशेष से शरीर को थकाने को प्रयास कहते हैं। प्रातःकाल शीतल जल से स्नान रात्रि में भोजन इत्यादि नियम भी योगसिद्धि में बाधक होते हैं। और लोगों के साथ से कामना होने लगती है जिनसे योग क्षीण हो जाता है। और चंचलता यानी स्थिरता के अभाव में योग हो ही नहीं सकता।

—आत्माराम

प्रत्याहार से अन्तर्मुखी साधना

[आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम० ए०, एम० एड०]

कहा जाता है कि मीन, मातंग, कुरंग, पतंग और भृङ्ग इन्द्रियासक्ति के कारण विनष्ट हो जाते हैं। मृग वधिक की मधुर स्वर लहरी पर आसक्त हो जाता है जिससे शिकारी उसे पकड़ लेता है। प्रसिद्ध भी है—'नाद रीझि तन देत मृग' शब्द विषय की आसक्ति मात्र से स्वच्छन्द विहरण करने वाला वन का सुन्दर प्राणी मृग नष्ट हो गया। इसी प्रकार स्पर्श सुख की आसक्ति के कारण हाथी बन्धन में पड़ जाता है। कहा जाता है कि हाथी बहुत कामी होता है अतः हाथी पकड़ने वाले लोग कागज की हथिनी बनाकर एक गड्ढे को तृण से ढककर उसके पास रख देते हैं। हाथी अपनी सहज आसक्ति के कारण हथिनी की ओर आकृष्ट होता है और गड्ढे में गिर पड़ता है। परवाना रूप का दीवाना होने के कारण दीपशिखा की ओर खिंचा चला जाता है और आत्म-दाह कर लेता है। भ्रमर रसासक्ति के कारण कमल—कोष में बन्द होकर प्राण गंवा बैठता है। इसी प्रकार गन्धशक्ति के कारण मछली शिकार करने के चक्कर में खुद शिकार हो जाती है। जब पशु-पक्षी केवल एक-एक इन्द्रिय की विषयासक्ति के कारण जीवन से हाथ धो बैठते हैं तो उन मनुष्यों का ईश्वर ही रक्षक है जो अनेक विषयों के—ग्यारह इन्द्रियों की आसक्ति के एक साथ शिकार होते रहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण आत्म कल्याण के मार्ग का उपदेश देते हुए अर्जुन को विषयासक्ति से दूर रहने का उपदेश देते हैं :

इन्द्रियाणां हि चरतां
यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां
वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

गीता २/६७

जैसे वायु का वेग जल में नाव को बहा ले जाता है उसी प्रकार जब मन सांसारिक विषयों में भटकती हुई इन्द्रियों के पीछे जाने लगता है तो विषय मनुष्य की मति हर लेते हैं। जिस प्रकार नारद जैसे वीतराग नारायण गुणानुवाद रत्त महात्मा के मन को विश्व मोहिनी के रूप ने विषयी बनाकर ईश्वर चिन्तन के आनन्द से वंचित कर दिया फलतः उनके जीवन में सुख-शान्ति, स्थिति प्रज्ञता के स्थान पर अशान्ति, घोर दुःख तथा अपमान का कष्ट आ गया उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःखों का जन्म इन्द्रियों के स्व-स्व विषयों की ओर प्रवृत्त होने के कारण होता है।

प्राच्य एवं पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

विषयों की आसक्ति व्यक्ति को बहिर्मुखी बनाती है। पर ब्रह्म की ओर मन झुक जाने पर व्यक्ति स्थित प्रज्ञ एवं अन्तर्मुखी बन कर शाश्वत सुख और शान्ति का अनुभव करता है। विषयासक्ति की चरम परिणति सम्पूर्ण विनाश में होती है। पाश्चात्य चिन्तन भोगों के अधिक से अधिक भोग पर बल देता है। मनोविश्लेषण वादी फ्राइड तथा प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट इन्द्रिय भोग को ही सच्चा सुख मानते हैं। फ्राइड दमन, (Inhibition) प्रत्याहार (Withdrawal) इच्छा निरोध (Repression) को मानसिक स्वास्थ्य के लिये त्याज्य मानता है। इस प्रकार के जीवन से व्यक्ति के मन में कुण्ठायें, त्रास तथा भग्नाशायें (Frustration) कुसमायोजन (Maladjustment) की समस्या उत्पन्न कर देती है जिसका परिणाम होता है कि मनुष्य इतोभ्रष्ट-ततो भ्रष्ट हो जाता है। पाश्चात्य चिन्तन धारा में आत्मिक आनन्द की अनुभूति न होने के कारण जीवन के प्रति बहिर्मुखी दृष्टिकोण स्वीकार्य किया जाना स्वाभाविक है। जिस मेंढक ने कुएँ से निकल कर कभी समुद्र के दर्शन नहीं किये यदि उसे समुद्र के बारे में बताया जाय तो कैसे विश्वास होगा? उसके लिए समुद्र कुएँ से थोड़ा बहुत अधिक बड़ा होगा। यही दशा पाश्चात्य मनोविज्ञान और दर्शन की है। पाश्चात्य-चिन्तन की मान्यता है कि व्यक्ति को अपनी इच्छायें बढ़ाना चाहिए और इच्छाओं को पूर्ण करने के साधन बढ़ाना ही सभ्यता है। जो देश व्यक्ति की अधिक से अधिक बढ़ती हुई इच्छाओं की पूर्ति के जितने अधिकाधिक साधन जुटा सकता है वह उतना ही प्रगतिशील एवं उन्नत राष्ट्र माना जाता है। व्यक्ति के सुख का आधार 'कामकामी' होना नहीं अपितु आत्म का कामी होना है— ऐसी भारतीय दर्शन की मान्यता है। संसार के विषयों को भोगता हुआ भी जो मनुष्य विषयों के द्वन्द्व से आहत नहीं होता, जो इच्छाओं और कामनाओं के पीछे ही पागल की तरह नहीं भागता रहता वही सुखी है। जैसे नद-नदियाँ समुद्र में आकर समा जाती हैं किन्तु वह क्षुब्ध नहीं होता उसी प्रकार जो 'गुण गुणों में बरत रहे हैं (गुणा-गुणेषुवर्तन्ते इति) ऐसा मानकर सदा एक रस बना रह सकता है वह शान्ति लाभ कर सकता है। भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ता यह भारतीय दृष्टिकोण है। यहच्छा लाभ सन्तुष्ट—यह भारतीय दृष्टिकोण है – जीवन में असन्तोष और कामनाओं को जितना अधिक बढ़ाया जाय उतना ही व्यक्ति उन्नति और सुख साधनों को जुटाने की ओर अग्रसर होगा। दुर्भाग्य से विदेशी चश्मा पहनकर कुछ भारतीय तथाकथित योगी भी इच्छाओं की पूर्ति के सिद्धान्त का प्रचार करते फिरते हैं। किन्तु शास्त्र कहता है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः
सङ्गस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः
सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

इन्द्रियों को विषय अपनी ओर खींचते रहते हैं । विषयों का बार-बार चिन्तन करने से विषयों के साथ संग (Association) पैदा होता है। संग से कामना जन्म लेती है। विषयासक्ति की पूर्त में यदि कोई बाधा आती है तो व्यक्ति क्रोध से आग -बबूला हो उठता है और न कहने योग्य कह जाता है, न करने योग्य कार्य कर जाता है । क्रोध से विवेक तथा स्मृति नष्ट हो जाती है विवेक और स्मृति के नष्ट हो जाने से बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिनाश से व्यक्ति भी नष्ट हो जाता है। अतः अभ्यास और वैराग्य के द्वारा विषयों से हटाकर इन्द्रियों को मन के अधीन और मन को बुद्धि के अधीन तथा बुद्धि को आत्मा के अधीन कर देना चाहिए। जो व्यक्ति विषयों से मन को हटाकर आध्यात्मिक आनन्द से मन को जोड़ देता है उसे शास्त्रों में 'स्थितप्रज्ञ' कहा गया है।

प्रजहाति यदा कामान्
सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः
स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो
निगृहीतानि सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-
स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जिसकी इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार से दूर खींच ली गई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए। प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा जीव जागृतावस्था में आ सकता है। विषयासक्त मन बंधा हुआ है और मोह निद्रा में पड़ा हुआ नाना प्रकार के सांसारिक स्वप्न रूपी प्रपंचों के दुःखों से पीड़ित है । गोस्वामीजी कहते हैं कि विषयासक्ति से वैराग्य होने पर ही समझना चाहिए कि व्यक्ति जग गया है ।

जानिय तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब विषय अभिलाष बिरागा ॥

जागे हुए व्यक्ति को सम्यक् प्रकाश और बोध रहता है।

कूर्मवृत्ति के अभ्यास द्वारा इन्द्रियों को विषयों से खींचकर आत्मा की ओर मोड़ देना चाहिए। गीता में कहा गया है :—

यदा संहरते चाऽयं
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-
स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
२/५८

जैसे कछुआ जल में अपने हाथ-पैर फैलाकर तैरता है, वैसे मनुष्य संसार सागर में विचरे, परन्तु संकट आते ही जैसे वह अपने सब अंग समेट लेता है वैसे ही विषयों का संकट आते ही मनुष्य अपनी सब इन्द्रियाँ को समेट कर अन्तर्मुखी कर दे तभी उसकी प्रज्ञा विवेक युक्त होकर समाधि सुख का आनन्द ले सकती है। बाह्य रूप से विषयों से इन्द्रियों को खींच लेने से ही काम नहीं चलेगा परन्तु जब तक मन में लालसा बनी रहेगी तब तक मन की खटपट बनी रहेगी। अयोध्यावासी अपनी शैया और सुख छोड़कर वन गमन के समय भगवान राम के साथ चल पड़े। परन्तु मार्ग में उन्हें नींद आगई और इतने में ही भगवान राम उनसे अलग हो गये। उन्होंने बाह्य रूप से गृह पत्नी, शैया भोजन आदि का सुख छोड़ दिया था पर मन में विषयों के प्रति लालसा नहीं छूटी थी। शैया छोड़ दी थी पर नींद तो साथ चली आई। भगवान् श्रीकृष्ण संकेत करते हैं कि बाह्य विषयों से सम्बन्ध तोड़ देने मात्र से काम नहीं चलेगा। मानसिक प्रत्याहार भी उतना ही आवश्यक है। अन्यथा यह ढोंग और दिखावा होगा।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य
य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा
मिथ्याचारः स उच्यते ॥
३/६

लालसा विषयों का मानसिक चिन्तन है। इसे दूर करने के लिए निषेधात्मक (Negative) प्रत्याहार (Withdrawal) उपाय के साथ-साथ विधेयात्मक (Positive) उपाय धारणा तथा ध्यान की आवश्यकता है।

मनोविश्लेषणवादी (Psychoanalylitic psychologists) मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि विषय वासना को दबाना ठीक नहीं है। दमित इच्छाये अवचेतन मन में (Unconscious mind) में इकट्ठी होती रहती हैं। कालान्तर में वे शारीरिक रोग तथा मानसिक विकृतियों के रूप में प्रकट होकर व्यक्तित्व को कुसमायोजित करती हैं। अतः गीता लालसा का भी मूलोच्छेदन करने का उपाय बताती है :—

विषया विनिवर्तन्ते
निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य
परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥
२/५९

विषयों को त्याग देने पर भी मानसिक लगाव (लालसा) दूर नहीं होता। वह लालसा रसानां रसः परब्रह्म के दर्शन से दूर हो जाती है। मनोविश्लेषणवादियों के पास लालसा दूर करने का कोई उपाय नहीं है अतः वे भोगवाद का ही समर्थन करते हैं।

भारतीय मनीषी ही यह जानते हैं कि पदार्थों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। उसे भासित करने वाला चेतन तत्त्व पदार्थ से भिन्न है। वह चेतन तत्त्व (आत्मा) पदार्थ सापेक्ष्य नहीं है। बाह्य पदार्थों के अभाव में ही आत्मा के सत् चित् आनन्द के वास्तविक दर्शन होते हैं। वास्तव में अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि होना ही अविद्या है। अविद्या ही दुःख की जननी है। मृग रेगिस्तान में सूर्य की किरणों की चमक से रेत को जल समझ-कर भागता-भागता अपने प्राण गंवा देता है। यह अविद्या नहीं तो क्या है। अतः योग-दर्शन कहता है—

द्रष्ट्र दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।

द्रष्टा-पुरुष तथा दृश्य—भोग्य प्रकृति का संयोग ही संसार के दुःखों का कारण है अतः उसका त्यागकर कैवल्य लाभ से ही शाश्वत सुख और शान्ति का आनन्द प्राप्त हो सकता है।

केवल बाह्य निरोध और प्रत्याहार से इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध भले ही टूट जाय पर उससे बिल्कुल छुटकारा नहीं मिल सकता। घोड़े की चंचलता दूर करने के लिए उसके चारों पैर रस्सी से बांधकर उसे खूँटे से बाँध देने से उसकी हलचल बन्द नहीं हो सकती। वह कुछ न कुछ खटपट करता ही रहेगा। अच्छा यह हो कि उसे कुशल सवार के हाथ सौंप दिया जाय। उसकी गति सवार की इच्छा से नियन्त्रित होने पर उस घोड़े के पथ भ्रष्ट होने का भय नहीं रहेगा। इसी प्रकार इन्द्रियों को विषयों से अलग कर आत्मा की ओर खींच लो। भगवान अर्जुन से कहते हैं—

तानि सर्वाणि संयम्य,
युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
२/६१

इन्द्रियों को वश में करके युक्त होकर, मेरे साथ जुड़कर सुख से ही रमने लगे—तभी समाधि सुख का आनन्द प्राप्त हो सकेगा। आत्म तत्व के साथ सम्बन्ध जुड़ने पर कामनायें उसी प्रकार विनष्ट हो जाती है जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से दीपक की लौ अभिभूत हो जाती है। निस्पृह व्यक्ति ही शान्ति प्राप्त करता है। 'जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिए, वे शाहन के शाह।'

प्रत्याहार और अष्टाङ्ग योग

योग के आठ अङ्गों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन अन्तरंग साधन हैं। अन्नमय तथा प्राणमय कोशों की साधना प्राणायाम तक हो जाती है। उसके बाद मनोमय कोश की साधना प्रत्याहार से प्रारम्भ होती है। धारणा एवं ध्यान विज्ञानमय कोश की साधना है तथा समाधि आनन्दमय कोष की साधना है।

प्रत्याहार का लक्षण भगवान पतञ्जलि ने इस प्रकार किया है:—

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार
इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः
योगदर्शन २/५४

अर्थात् इन्द्रियों का शब्द रूप, रस, स्पर्श और गन्ध का विषयों से सम्बन्ध न होने पर जो चित्त के रूप के समान इन्द्रियों का रूप हो जाता है वह प्रत्याहार कहा जाता है। जब प्राणायाम से—प्राण संयम से चित्त का व्यापार नियन्त्रित हो जाता है तब चित्त के अधीन इन्द्रियों का व्यापार भी चित्त के नियन्त्रित होने पर नियन्त्रित हो जाता है। चित्त ध्येयाकार हो जाने पर इन्द्रियां भी बाह्य विषयों से हटकर चित्त की अनुगामिनी हो जाती हैं। व्यासदेवजी एक उदाहरण द्वारा प्रत्याहार के लक्षण को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

'यथा मधुकर राजं
मक्षिका उत्पतन्तम् उत्पतन्ति।
तथा इन्द्रियाणि चित्तनिरोधे
निरुद्धानीत्येषः प्रत्याहारः।

अर्थात् मधुकर राज के फूल से उड़ जाने पर उसके पीछे-पीछे अन्य मक्षिकाएँ भी उसका अनुसरण करती हुई उड़ जाती हैं, उसके अन्यत्र बैठ जाने पर बैठ जाती हैं, वैसे ही चित्त के निरुद्ध होने पर इन्द्रियाँ भी निरुद्ध हो जाती हैं। इन्द्रिय निरोध के लिए उपायान्तर की अपेक्षा नहीं रहती।

गोरक्षनाथ रचित अमनस्कयोग में भगवान पतञ्जलि के मत का समर्थन प्रकारान्तर से इस प्रकार है:—

चित्ता दि विलये जाते
पवनस्य लयो भवेत्।
मनः पवन योः नाशात्
इन्द्रियार्थं विमुञ्चति॥
इन्द्रियार्थं यदा मुक्तो
बाह्य ज्ञानं न जायते।
बाह्यज्ञाने विनष्टे च
ततः सर्वसमो भवेत्॥
यदा सर्व समो जातो
भवेद् व्यापार वर्जितः।
परे ब्रह्मणि सम्पन्नो
योगी प्राप्त लय स्तदा॥

अर्थात् चित्तादि का विलय हो जाने पर वायु का लय हो जाता है। मन और प्राण का लय हो जाने पर साधक इन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध) का त्यागकर देता है। इन्द्रियों का विषय से सम्बन्ध न रहने पर वह बाह्य ज्ञान शून्य हो जाता है। बाह्य ज्ञान नष्ट हो जाने पर वह विषमताओं से रहित हो जाता है। सभी में समत्व भाव को प्राप्त होने पर योगी सर्व व्यापार रहित हुआ परब्रह्म में लीन हो जाता

है।' स्वरूप में स्थित होने पर कर्म काण्ड का झगड़ा मिट जाता है। सन्त तुलसी कहते हैं—

वेदान्त सम्मत प्रत्याहार

कर्म कि होहि
स्वरूपहिं चीन्हें ॥

विभिन्न उपनिषदों में प्रत्याहार के प्रभेदों व फल का उल्लेख विस्तार के साथ किया गया है। त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषद् में चित्त के अन्तर्मुखी होने को प्रत्याहार संज्ञा दी है। तेजोबिन्दूपनिषद् में कहा गया है कि विषयों में आत्म भावना कर चित्त को प्रसन्न रखने का नाम प्रत्याहार है। इसी प्रकार अमृत-नादोपनिषद् में प्रत्याहार के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा गया है कि जो विषय देखे उसमें आत्मभाव रखना प्रत्याहार है—

सीय राममय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

इस अर्धाली में भी यही भावना व्यक्त की गई है। दर्शनोपनिषद् में भी कहा गया है कि जो कुछ शुभ अशुभ कर्म करो वह ईश्वर में स्थित रहकर करो वह भी प्रत्याहार ही है। अथवा ईश्वर पूजा समझकर सारे कार्य करना भी प्रत्याहार है।

हठयोग सम्मत प्रत्याहार

हठयोग में प्राणवायु के जय को प्रत्याहार माना गया है। दर्शनोपनिषद् में कहा गया है—

'अथवा वायुमाकृष्य स्थानात्
स्थान निरोधयेत्।
दन्तमूलात् तथा कण्ठे,
कण्ठादुर सि मारुतम्।
उरोदेशात् समाकृष्य
नाभिदेशे निरोधयेत् ॥
नाभिदेशात् समाकृष्य
कुण्डल्यां तु निरोधयेत्।
कुण्डली देशतो विद्वान्
मूलाधारे निरोधयेत् ॥
अथापानात् कटि द्वन्द्वे
तथोरौ च सुमध्यमे।
तस्माज्जानुद्वयेजंघे
पादाङ्गुष्ठे निरोधयेत् ॥
प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु
प्रत्याहार परैः पुरा ॥

विपरीत रीति से कुम्भक युक्त वायु को धारणा करने से प्रत्याहार सिद्ध होता है। वायु को दन्तमूल, फिर कण्ठ से, कण्ठ से उर, उर, से खींचकर कुण्डलिनी में रोके। कुण्डलिनी से मूलाधार में ले जाय। मूलाधार से कमर में, जंघाओं में रोकता हुआ पैरों के अंगूठों में रोके।

त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषद् में मर्म स्थानों में वायु खींचकर कुम्भक रीति से धारणा करना प्रत्याहार कहा गया है। अठारह मर्म स्थानों में आरोह अवरोहण क्रम से

प्राणों का प्रत्याहार करने का निर्देश मिलता है। वे स्थान हैं—(१) पादाङ्गुष्ठ (२) गुल्फ (३) जङ्घा का मध्य भाग (४) ऊरू का मध्य (५) गुदा का मूल भाग (६) हृदय (७) मेढ्र (८) देह का मध्य भाग (९) नाभि (१०) कण्ठ (११) तालु मूल (१२) नासिका (१३) नेत्र गोलक (१४) भौंहों के बीच का भाग (१५) ललाट (१६) चिबुक का मूल भाग (१७) हाथों का मूल (१८) कराग्र।

योग चूड़ामणि उपनिषद् में प्राणायाम के साथ-साथ प्रत्याहार करने का भी विधान है। चक्षुरादियों का विषयों से शनैः शनैः उसी प्रकार प्रत्याहार करना चाहिये जिस प्रकार सूर्य तीसरे पहर अपनी किरणों को समेट लेता है।

प्रत्याहार के विभिन्न स्वरूप

योगोपनिषदों में प्रत्याहार के अनुलोम-रूपों का निर्देश मिलता है। शाण्डिल्य उपनिषद् में पाँच प्रकार के प्रत्याहार का उल्लेख है :—

(१) विषयों से बलपूर्वक इन्द्रियों को अलग करना। (२) इस जगत् में आत्मा की भावना करना (सर्वं खलु इदं ब्रह्म) (३) काम्य तथा नित्य नैमित्तिक कर्मों का फल ईश्वर को समर्पित करना। कर्मफल से मन को खींच लेना। (४) सभी प्रकार के विषयों से तृष्णा रहित होकर वैराग्य की स्थिति प्राप्त करना। (५) अठारह मर्म स्थानों में क्रमशः प्राणवायु को खींचकर एक एक स्थान पर कुम्भक करते जाना।

प्रत्याहार का फल

दर्शनोपनिषद् में कहा गया है कि प्रत्याहार का अभ्यास करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं तथा संसार के संसर्गजन्य सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रत्याहार का सम्यक् अभ्यास हो जाने पर योगी इन्द्रिय जयी हो जाता है। श्रीयुत शंकराचार्यजी से शिष्य ने पूछा—जगज्जितं केन ? उत्तर में उन्होंने कहा—मनोजितं येन।' अर्थात् जिसने मन को जीत लिया है वह संसार को जीतने की सामर्थ्य रखता है। जिस प्रकार एटमबम्ब और हाईड्रोजन बम्ब से सम्पन्न देश विश्व विजय कर सकता है उसी प्रकार मनोजयी भी प्रकृति के परमाणुओं पर वशीकार करने में समर्थ हो सकता है। अपनी इच्छा शक्ति (Will power) से उसके लिये कुछ भी कर सकना मुश्किल नहीं है। मन में एटमबाम्ब से भी कई गुनी शक्ति है।

महर्षि पतंजलि प्रत्याहार का फल बताते हैं -

'ततः परमावश्यता इन्द्रियाणाम्।

साधनपाद/५५

अर्थात् विषयों से इन्द्रियाँ आकृष्ट नहीं होतीं। विषय इन्द्रियों के अधीन हो जाते हैं इन्द्रियाँ विषयों के अधीन नहीं होतीं। वह शब्द सुनना चाहे तो शब्द सुनता है देखना

चाहे तो दृश्य देखता है। रागद्वेष से रहित, सुख दुःख से शून्य बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होना इन्द्रियजय कहलाता है। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही न्याय कर सकता है तथा वस्तुनिष्ठ (Cbjrctive) दृष्टिकोण रख सकता है। महाकवि भारवि ने अनुशासनहीनता को दूर करने का मन्त्र दिया है –

'जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणम्।'

अर्थात् जितेन्द्रिय व्यक्ति ही अनुशासन प्रिय हो सकता है। जिसके नेत्र रूप के पीछे खिचकर चले जा रहे हैं। कान सिनेमा के गानों के पीछे खिंचे जा रहे हैं वह नवयुवक देश की सम्पत्ति नहीं जलायेगा तो क्या करेगा ? चित्त संयमित होने पर इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। पहले प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम से चित्त निरोध, और चित्त निरोध से इन्द्रियों का सर्वांश और सर्वथा वशीकार हो जाना प्रत्याहार का फल है। प्रत्याहार सिद्ध होने पर सम्प्रज्ञात योग का विद्यार्थी बन पाता है।

मानस रोगों को दूर करने की अमोघ औषधि है प्रत्याहार। संसार के अस्सी प्रतिशत लोग मानस रोगों से दुःखी हैं। मनोविश्लेषक मनोवैज्ञानिक प्रत्येक शारीरिक रोग का कारण मानसिक विकारों को ही मानते हैं। लोभ होने पर शरीर के किसी अंग को लकवा मार जाता है। क्रोध होने पर पाचन शक्ति मन्द हो जाती है। चिन्ता रहने पर दमा, मिर्गी तथा क्षयरोग हो जाते हैं। परीक्षा की तैयारी ठीक न हो तो प्रायः देखा जाता है छात्र बीमार पड़ जाते हैं। सिर दर्द, पीठ दर्द आदि अनेकों प्रकार की व्याधियों का कारण स्नायविकता तथा अवरोध, एवं तनाव आदि है। गोस्वामीजी कहते हैं कि मानस रोगों से सभी जीव दुःखी हैं।

'व्यापहिं मानस रोग न भारी।
जिन्ह के बस सब जीव दुःखारी॥

मानस रोगों में प्रथम मोह है। मोह, ममत्व, मैंपना और अहंकार मिलते-जुलते शब्द हैं। संसार में सारा झगड़ा तू-तू, मैं-मैं का ही तो है। गोस्वामीजी कहते हैं :—

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।
जिन्ह ते उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई।
उपजइ सन्यपात दुःखदायी॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना।
ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कण्डु इरषाई।
हरष विषाद गरह बहुताई॥
पर दुःख देखि जरनि सोइ छई।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुःखद डमरुआ।
दम्भ कपट मद मान नेहरुआ॥

इसी प्रकार तृष्णा जलोदर है तथा वित्तैषणा, पुत्रैषणा एवं यश की इच्छा तिजारी ज्वर है। दूसरों से द्वेष करना ज्वर का जनक है।

एक व्याधि बस नर मरहिं,
ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ,
सो किमि लहै समाधि॥

मानस रोगों से मुक्ति मिलना बड़ा कठिन है। गोस्वामीजी नीरोग व्यक्ति का लक्षण बताते हैं :—

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई।
जब उर बल बिराग अधिकाई॥

मन में वैराग्य का बल बढ़ने लगे तब समझना चाहिए कि तबियत ठीक हुई है।

योग चूडामणि उपनिषद् में भी यही कहा गया है कि आसन से शारीरिक रोग और प्राणायाम से पातक तथा प्रत्याहार से मानस विकार दूर हो जाते हैं। धारणा से मन में स्थिरता तथा अद्भुत चेतना आती है। समाधि से शुभाशुभ कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

'आसनेन रुजं हन्ति
प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी
प्रत्याहारेण मुञ्चति॥
धारणाभिर्मनोधैर्यं
याति चैतन्यमद्भुतम्।
समाधौ मोक्षमाप्नोति
त्यक्त्वा कर्मशुभाशुभम्॥

बारह प्राणायाम से प्रत्याहार सिद्ध होता है। बारह प्रत्याहार से धारणा सिद्ध होती है। पहले स्थूल पदार्थों से आरम्भ कर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विषयों से मन हटाकर मन को बुद्धि में, बुद्धि को आत्मा में लीन कर आनन्द का वरण करना चाहिये।

उद्बोधन

कबिरा गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।
न जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल यह, कौड़ी बदले जाय॥

योगसिद्धियाँ और उनकी प्राप्ति

[कविरत्न, श्री अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य उपप्राचार्य]
श्री लालबहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली

श्री योग साधना-सम्बन्धी अनेक विधि-विधान वेदों में—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद प्रथममण्डल के ८१ वें सूक्त के—

'युञ्जते मन उत युञ्जते धियो,
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
विहोत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही
देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥

इत्यादि मन्त्रों में ज्ञानवान्, मेधावी महापुरुष के निर्देशन में मेधावी पुरुषों द्वारा मनोयोग (ध्यान) और बुद्धियोग (समाधि) का अभ्यास करने का वर्णन किया गया है। वहाँ वैसे प्रज्ञावाली महापुरुष की दुर्लभता और भगवान् सूर्य के समान परम स्तुति योग्यता का भी उल्लेख मिलता है। इतना ही नहीं इसी मण्डल के १८ वें सूक्त में—

'यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो
विपश्चितश्चन सधीनां योगमिन्वति॥

इत्यादि मन्त्रों द्वारा यज्ञादि की सिद्धि के लिये भी सदसस्पतिदेव से धी योग या बुद्धियोग (समाधि) की प्राप्ति के लिये प्रार्थना भी की गई है। कर्मों की स्वरूपसिद्धि ही जब योग के बिना सम्भव नहीं है, तब फल-सिद्धि के लिये तो योगसाधना अनिवार्य है ही। यह योगसिद्धि दो प्रकार की है—लौकिक और अलौकिक। लौकिक कारणों से कार्यों की प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध सम्पन्नता को लौकिक सिद्ध कहते हैं किन्तु योगातिरिक्त कारणों के बिना ही कार्यों की अचिन्त्य, अतर्क्य सम्पन्नता को अलौकिक सिद्ध कहते हैं, इस प्रकार की सिद्धियों को योगसिद्धि भी कहा जाता है। कहा भी है—

'साधने हि नियमोऽन्यजनानां
योगिनां तु तपसाखिलसिद्धिः।'

'अन्य लोगों के लिये साधनों का होना आवश्यक होता है योगियों को तो तपोबल से ही सब सिद्धियाँ या सफलताएँ प्राप्त हो जाती हैं। ये अलौकिक सिद्धियाँ योग या समाधि से ही प्राप्त होती हों यह बात नहीं है। अतएव पातञ्जल योग दर्शन के कैवल्य-पाद में प्रथम सूत्र—

जन्मौषधि मन्त्रतपः समाधिजाः
सिद्धयः।

जन्म, ओषधि, मन्त्र, तपश्चर्या और और समाधि से अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त

होती है। कुछ सिद्धियाँ जन्म से ही प्राप्त होती हैं। जैसे पक्षियों को आकाश गमन आदि। महर्षि कपिल को जन्म के अनन्तर ही ज्ञान आदि सांसिद्धिक गुण प्राप्त थे। औषधि सेवन से भी कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होती है जैसे पारदादि से बने रसायन आदि के उपयोग से स्थिर यौवनादि की प्राप्ति हो जाती है। मन्त्र से भी कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, अथर्ववेद में इसके अनेक उदाहरण विद्यमान है। मन्त्र जप से ही आकाशगमनादि की सिद्धि प्राप्त हो जाना भी कहा गया है। तपश्चर्या से भी कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं जैसे राजर्षि विश्वामित्र तपश्चर्या से ब्रह्मर्षि हो गये। इसी प्रकार समाधि से भी अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती है, जिसका वर्णन हम मई १९७३ के अङ्क में कर चुके है। यद्यपि हमने यहाँ जन्मादि को भी सिद्धि का कारण लिखा है और उनके उदाहरण भी दिये है, किन्तु विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनमें भी समाधि ही कारण है। जिन्होंने समाधि द्वारा पूर्व जन्म में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक पाँचों क्लेशों को शान्त कर लिया होता है। पाप और पुण्य रूप शुभाशुभ कर्मों और उनके सुखदुःखरूप परिणामों से भी मुक्तप्राय हो जाते है किन्तु आशय या वासना के किसी संस्कार के कारण उन्हें पूर्ण सिद्धि प्राप्त नही होती ऐसे योग भ्रष्ट साधक —

'शुचीनां श्रीमतां गेहे
योगभ्रष्टोऽभि जायते।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके
जन्मयदीदृशम्॥
अथवा योगिनामेव
कुले भवति धीमताम्।'

इत्यादि स्मृतिवचनों के अनुसार सदाचार सम्पन्न श्रीमानों के घर में या प्रज्ञाशाली योगियों के कुल में जन्म लेते है, ऐसा जन्म जन-साधारण के लिये सुलभ नही है। ऐसे परिवारों में जन्म लेकर वे पुनः संसिद्धि या पूर्णसिद्धि के लिये प्रयत्न करते है। इस प्रयत्न परम्परा में जब साधक जितेन्द्रिय और जितश्वास होकर अर्थात् प्राणायाम और प्रत्याहार पर्यन्त योग के पाँचों बाह्य अंगों को सिद्ध करके धारणा द्वारा अपने ध्येय में मन-को बाँध देता है, ध्यानयोग से और समाधिमें योग से युक्त हो जाता है तब उसके पास सिद्धियाँ उपस्थित होती है। श्रीमद्भागवत में इन सिद्धियों की संख्या अठारह बताई गई है जिनमें से प्रधान रूप से परमात्मा को ध्येय रखकर साधना करने वालों को अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती है किन्तु वस्त्वन्तरों में संयम करने वालों को भी जब सत्त्वगुण का उद्रेक प्राप्त होता है तब भूख प्यास न लगना, दूर तक शब्द को सुनना और रूप को देखना, मन के वेग

शरीर की गति होना, मनचाहा रूप बना लेना, दूसरे के शरीर में अपने सूक्ष्म शरीर से प्रविष्ट हो जाना, इच्छा हो तभी मरना, देवताओं के साथ अप्सराओं की क्रीडाओं को देखना, संकल्प के अनुरूप प्राप्ति होना, और आज्ञा का अनुल्लंघनीय होना जानना ये दस सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है। इनके अतिरिक्त पाँच क्षुद्रसिद्धियां और भी लिखी है- तीनों कालों का ज्ञान, सर्दी-गर्मी की सहिष्णुता, दूसरे के मन की बात जान लेना, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि को स्तब्ध कर देना तथा पराजित न होना।

'पातञ्जल योग दर्शन' के समान श्रीमद्-भागवत में भी प्रत्येक अमुक-अमुक ध्येयों में धारणा से अमुक-अमुक सिद्धियों की प्राप्ति का उल्लेख है किन्तु पातञ्जल योग दर्शन में धारणा-ध्यान-समाधि तीनों का एक ध्येय में होना संयम है और उस संयम से ये सिद्धियाँ प्राप्त होती है, ऐसा लिखा है। वास्तव में श्रीमद्भागवत के धारणा शब्द को भी इस संयम का ही उपलक्षण मानना चाहिये।

यद्यपि प्रतिज्ञावाक्य में अणिमादि आठ सिद्धियों की प्राप्ति परमात्मा को ही ध्येय रखने से प्राप्त होती है यह कहा गया है किन्तु व्याख्या के समय परमात्मा की सर्वतत्त्वात्मता का ध्यान रखकर भूतसूक्ष्मात्मा या तन्मात्रात्मा, महदात्मा या महाभूतात्मा, परमाणुमयात्मा, वैकारिक अहंतत्त्वात्मा इत्यादि ध्येयों में संयम से अणिमा, महिमा, लघिमा आदि की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। इसका अर्थ है कि—

भूमिरापोऽनलो वायुः
खं मनोबुद्धिरेवच।
अहङ्कार इतीयं मे
भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

इत्यादि स्मृति वचनों से 'परोक्षप्रिया वै देवाः' इस न्याय से कार्य द्वारा कारण का निर्देश करने की शैली में भूमि, आप, अनल, वायु, और ख अपने कारण पञ्च तन्मात्रों के बोधक है मन अपने कारण अहंकार अपने कारण महत् या बुद्धितत्त्व का और बुद्धि अपने कारण प्रकृति का बोध कराती है। इनमें संयम से अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा और प्राप्ति सिद्धियाँ प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवतकार का यह आशय प्रतीत होता है। तदनन्तर त्रिगुण प्रकृति के अधीश्वर श्रीविष्णु में संयम से ईशित्व, तुरीयतत्त्व स्वरूप भगवच्छब्दवाच्य नारायण में संयम से वशित्व और निर्गुण ब्रह्म में संयम से परमानन्द या प्राकाम्य की प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

अन्य दस सिद्धियों की प्राप्ति धर्ममय श्वेतद्वीपपति, आकाश, आदित्य, आदि स्वरूपा में संयम से बताई गई है। क्षुद्रसिद्धियों की प्राप्ति मुख्यतया भगवद्भक्ति के द्वारा सहज सूचित की गई है। अन्त में लिखा है कि जो शान्त दान्त है, जितश्वास और जितेन्द्रिय है तथा मेरी धारणा करता है उसके लिये कौन-सी सिद्धि दुर्लभ है। किन्तु इन मुख्य (८)

मध्यम (१०) और क्षुद्र (५) तीनों प्रकार की सिद्धियों को उत्तमयोग के साधकों के मार्ग में विघ्न बताया गया है और भगवत्प्राप्ति में समय खराब करके विलम्ब करने का कारण कहा गया है।

श्रीमद्भागवत में भी पातञ्जल योग दर्शन के समान जन्म, औषधि, तपश्चर्या और मन्त्र द्वारा भी कुछ सिद्धियों के प्राप्त होने की सम्भावना की गई है किन्तु उन सबकी प्राप्ति योग द्वारा सम्भव, और योग सिद्धियों की प्राप्ति उनके द्वारा असम्भव बताई गई है।

❀ बंदउँ गुरु पद कंज ❀

बंदउं गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रबि कर निकर ॥

बंदउं गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू ॥
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएं तिलक गुन गन बस करनी ॥
श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन ॥

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥

—सन्त तुलसीदास

विशेष लेखमाला —

जीवन तत्त्व साधन

[गिरिशदेव वर्मा, फतहपुर]

७. — उत्क्षेपण

जीवन तत्त्व साधन की सातवीं व अन्तिम क्रिया का नाम उत्क्षेपण है। इसको करने के लिए सीधे खड़े हो जाइये और अपने हाथ व पैरों को क्रमशः झटक दीजिये। पहले दाहिने हाथ व दाहिने पैर को एक साथ झटक दीजिये, फिर बायें हाथ व बायें पैर को एक साथ झटक दीजिये। इसी तरह बारी-बारी से दोनों हाथों व पैरों को झटक देना चाहिये। इस क्रिया को केवल एक या दो मिनट करना चाहिये। इससे शरीर में एक प्रकार की नई चेतना-सी आ जाती है और साधक सचेत होकर यथार्थ स्थिति में आकर अन्य कार्यों के लिये तैयार हो जाता है।

हमारा जो शरीर दिखाई पड़ रहा है वह तो केवल स्थूल शरीर है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर भी हैं। तीनों शरीरों में पाँच कोष हैं। स्थूल शरीर में अन्नमय कोष है तथा सूक्ष्म शरीर में प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोष हैं और कारण शरीर में आनन्दमय कोष रहता है। स्थूल शरीर के कोषों के सम्बन्ध में हम पिछले लेखों में बता आये हैं। उत्क्षेपण की क्रिया से तीनों शरीरों में सामञ्जस्य उत्पन्न हो जाता है। हाथ पैरों को झटकने से सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों में चेतना उत्पन्न हो जाती है और वे सक्रिय होकर काम करने लगते हैं। आधार चक्र से लेकर आज्ञा चक्र तक में नवीन स्फूर्ति भर जाती है। हम प्रस्तुत लेख में सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों को विस्तार से समझाने का प्रयास करेंगे ताकि उत्क्षेपण से होने वाले लाभ को जाना जा सके। जीवन तत्त्व साधन की यह क्रिया देखने व करने में बहुत साधारण मालूम देती है किन्तु इसका प्रभाव आश्चर्यजनक है। यथाविधि इस क्रिया को करने वाले साधक कुछ दिनों में यह अनुभव करेंगे कि हाथ पैरों के झटकने कितना प्रभाव दिखाते हैं और सारे शरीर में विद्युत प्रवाह चलने लगता है। अब हम सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों का वर्णन करेंगे।

(१) प्राणमय कोष

इसमें सब प्राण अपनी शक्ति से अपना अपना कार्य करते हैं। शरीर के अन्दर पाँच स्थानों में इनका व्यापार होता है अतएव पृथक-पृथक कार्य करने के कारण इनका पृथक-पृथक नाम निम्नलिखित हैं :

प्राण-अपान-समान-व्यान-उदान।

(i) प्राण का कार्य श्वास-प्रश्वास के लिये मुख, नाक, कान, नेत्र तथा फेफड़ों में हुआ करता है।

(ii) अपान का कार्य मल, मूत्र व गर्भ निकालने के लिये लिंगेन्द्रिय व गुदा में हुआ करता है।

(iii) समान का कार्य समस्त शरीर में भोजन पहुँचाने के लिये उदर में हुआ करता है।

(iv) व्यान का कार्य रक्त संचालन के लिये समस्त नाड़ियों में हुआ करता है। हृदय से १०१ नाड़ियां निकलती हैं। फिर आगे उनमें से एक एक से सौ-सौ शाखायें निकलती हैं, फिर उनमें एक एक से ७२, ७२ शाखायें निकलती हैं, फिर उनमें से एक एक से हजार-हजार शाखायें निकलती हैं। इस तरह से कुल ७२, ७२,००,००० शाखाओं में व्यान वायु चक्कर किया करती हैं।

(v) उदान का कार्य शरीर के समस्त कर्मों के प्रभाव को संचित करने के लिये सुषुम्ना नाड़ी में हुआ करता है। उदान वायु मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर को लेकर उड़ जाता है। जिस समय जीव सूक्ष्म शरीर के साथ निकलता है उस समय शरीर के मुख, नाक, कान आदि छिद्रों से निकलता है, परन्तु कर्मों का क्षय होने पर जब अकेला निकलता है तो सिर को फोड़ कर विद्रत द्वार से निकलता है। जीव इसी विद्रत द्वार से शरीर में प्रवेश करता है और तभी कपाल का भाग पोला होता है और डब-डब किया करता है।

इन पाँच प्राणों के अतिरिक्त पाँच प्राण भी होते हैं।

नाग-कूर्म-कुकर, देवदत्त, धनञ्जय।

नाग वायु छींकना आदि, कूर्म वायु संकोचनीय, कुकर वायु क्षुधा तृष्णादि, देवदत्त वायु, निद्रा तन्द्रा आदि और धनञ्जय वायु पोषणादि का कार्य करता है। यदि सभी प्राण व उप प्राण अर्थात् रूप से कार्य करते रहें तो शरीर नीरोग स्वस्थ बना रहता है। जीवन तत्त्व साधन की क्रियायें सभी प्राणों में नव-चेतना का प्रवाह पैदा करती हैं।

(२) मनोमय कोष

इस कोष के अन्दर मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार है। योग में चित्त का विशेष स्थान है। चित जाग्रत अवस्था में माध्यम होकर स्थूल जगत का सम्बन्ध रखकर आत्मा को समाचार दिया करता है। चित्त की पाँच वृत्तियाँ होती हैं, वे कभी बहिर्मुखी होती हैं, कभी अन्तर्मुखी। पाँच वृत्तियां निम्नलिखित हैं:

प्रमाण-विपर्य-विकल्प-निद्रा-स्मृति

(i) प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष-अनुमान व आगम। जो इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है यह प्रत्यक्ष-प्रमाण है। प्राचीन सत्पुरुषों का जो अनुभव शब्दों में संग्रहीत है उसे आगम प्रमाण कहते है।

(ii) उल्टा ज्ञान होना विपर्य है। यथार्थ स्वरूप से भिन्न कुछ का कुछ समझना विपर्य है। जैसे रस्सी को सांप समझना।

(iii) कल्पना मात्र को विकल्प कहते है। वस्तु से शून्य शब्द ज्ञान पर कल्पना करना विकल्प है। जैसे गूलर के फूल की सम्भावना करना तथा शेख चिल्ली की तरह हवाई किले बनाना।

(iv) निद्रा वृत्ति वही है जिसका अनुभव सब को है। निद्रा के समय ज्ञान का अभाव हो जाता है।

(v) पांचवी वृत्ति स्मृति है। अनुभव किये हुये विषय का स्मरण करना स्मृति है।

यह सब वृत्तियां दो प्रकार की होती हैं। क्लेश कारक और क्लेश निवारक। जैसे अच्छे सद्गुरु के शब्दों पर विश्वास करने से लाभ। होता है और ढोंगी के शब्दों पर करने से हानि। योग निद्रा से आराम व साधारण निद्रा से सुस्ती। अच्छे-अच्छे उपदेशों को स्मरण करने से मनुष्य का अभ्युदय होता है, परन्तु दूसरे के दोषों का चिन्तन करने से मनुष्य का पतन होता है।

(३) विज्ञानमय कोष

इस कोष के अन्दर वह ज्ञान तन्तु व्यूह आते हैं जिनको चक्र अथवा (Plexus) कहते हैं। यद्यपि ये अवश्य स्थूल शरीर के ही अंग हैं परन्तु आधुनिक विज्ञान को इसका विशेष ज्ञान नहीं है और केवल योग बल ही से इसका हाल जाना जा सकता है। अतः हम इसका वर्णन सूक्ष्म शरीर ही में करेंगे।

मनुष्य शरीर में रहने वाले ज्ञान-तन्तुओं का समूह दो विभागों में विभाजित किया गया है। प्रथम मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के पोलान में रहने वाला ज्ञान तन्तुओं का समूह और दूसरा छाती, उदर और पेट के पोलान में रहने वाला ज्ञान तन्तुओं का समूह। प्रथम को मस्तिष्क व सुषुमना मण्डल और दूसरे को सहानुभूतिक मण्डल कहते हैं। पहली भाग मस्तिष्क से लेकर रीढ़ की हड्डी और उसकी शाखाओं में सीमित है। समस्त इन्द्रिय व्यापार इस विभाग के द्वारा होता है। दूसरा भाग छाती, पेट और पेट के नीचे के भागों तक है और शरीर का अन्तर्व्यापार इसका काम है।

मनुष्य का मस्तिष्क भी तीन भागों में विभाजित किया गया है।

(१) मुख्य मस्तिष्क (Cerebrum) जो खोपड़ी के ऊपर वाले अगले मध्य और पिछले भागों में रहता है। यह स्थान बुद्धि का गोलक है।

(२) गौड़ मस्तिष्क (Cerellum) जो सिर के नीचे वाले भाग में रहता है।

यह ऐच्छिक मांसपेशियों में गति का संचार करता है। यह चित्त का गोलक है।

(३) अधः स्थित मस्तिष्क (Medulla oblongata) जो मेरुदण्ड का ऊपरी भाग है। इससे और प्रधान मस्तिष्क से असंख्य ज्ञान तन्तु खोपड़ी के विविध भागों में फैल रहे हैं।

पीठ के बीचो-बीच रीढ़ की हड्डियां लम्बी जुड़ी हुई चली गई हैं। इसके बीच में जो पोला भाग है उसमें गुद्दी (Marrow) रहती है। इसमें ज्ञान तन्तुओं का एक बड़ा भारी समूह रहता है। शरीर के समस्त अवयवों से सम्बन्ध रखने वाले असंख्य ज्ञान तन्तु इससे निकल कर शरीर में फैले हुये हैं। मेरुदण्ड टेलीफोन के मुख्य तार हैं और तन्तु जाल उससे सम्बन्धित तार है।

दूसरा भाग सहानुभूतिक मण्डल है। इसमें नाड़ी गुच्छक (Ganglia) की दो श्रृंखलायें मेरुदण्ड के दाहिने व बायें दोनों ओर हैं। पृष्ठ रज्जु के बीच मे जाने वाली जो पोली-सी नली है उसे सुषुम्ना कहते हैं। इसके अतिरिक्त सिर, गर्दन, छाती, और पेट में भी स्वतन्त्रतापूर्वक रहने वाली ज्ञान तन्तुओं की ग्रन्थियां हैं। इन ग्रन्थियों में से असंख्य सूक्ष्म रेशे निकल कर शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में पहुंचे हैं। कई स्थानों पर ये तन्तु एकत्रित होकर मिल गये हैं। इन्हीं को चक्र कहते हैं। मुख्य सात चक्र हैं।

मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत विशुद्ध-आज्ञा-सहस्रार।

ये चक्र पांचों तत्वों, पांचों तन्मात्राओं, पांचों ज्ञानेन्द्रियों, पांचों कर्मेन्द्रियों पांचों प्राणों, अन्तःकरण, समस्त वर्णों स्वरों तथा सातों लोकों के मण्डल हैं और नाना प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत से युक्त है। साधारण अवस्था में ये चक्र बिना खिले कमल के सदृश अधोमुख हुये अविकसित रहते हैं। यौगिक क्रियाओं से उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होते हैं तब उनकी अलौकिक शक्तियों का विकास होता है। चक्रों का विशेष विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

[१] मूलाधार चक्र (Pelvic plexus)

(१) चक्रस्थान—गुदामूल से दो अंगुल नीचे।

(२) आकृति—रक्त रंग के प्रकाश से उज्ज्वलित चार पंखड़ी वाले कमल के समान।

(३) दलों के अक्षर चारों दलों पर वं, शं, षं और सं।

(४) तत्व स्थान - चौकोण सुवर्ण रंग वाले पृथ्वी तत्व का मुख्य स्थान है।

(५) तत्व बीज—लं है।

(६) तत्व बीज की गति—ऐरावत हाथी के समान सामने की ओर गाते हैं।

(७) गुण गन्ध गुण है।

(८) वायु स्थान—नीचे की ओर चलने वाले अपान वायु का स्थान है।

(९) ज्ञानेन्द्रिय—गन्ध तन्मात्रा से उत्पन्न होने वाली सूंघने की शक्ति नासिका का स्थान है।

(१०) कर्मेन्द्रिय पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होने वाली मलत्याग शक्ति गुदा का स्थान है।

(११) लोक—भू लोक है।

(१२) तत्व बीज का वाहन—ऐरावत हस्ती जिसके ऊपर इन्द्र विराजमान है।

(१३) अधिपति देवता चतुर्भुज ब्रह्मा अपनी शक्ति डाकिनी के साथ।

(१४) यन्त्र—चतुष्कोण-सुवर्ण रंग।

(१५) चक्र पर ध्यान का फल—आरोग्यता, आनन्द चित्त, वाक्य, काव्य प्रबन्ध दक्षता।

[२] स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric Plexus)

(१) स्थान—मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेड़ू के पास।

(२) आकृति सिन्दूरी रंग के प्रकाश से प्रकाशित छः दलों वाले कमल के समान।

(३) दलों के अक्षर बं, भं, मं, यं, रं, लं।

(४) तत्त्व स्थान—श्वेत रंग; अर्ध चन्द्राकार वाले जल तत्व का स्थान है।

(५) तत्व बीज - वं है।

(६) तत्व बीज गति मकर की तरह नीचे की ओर लम्बी गति है।

(७) गुण—रस है।

(८) वायु स्थान व्यान वायु का मुख्य स्थान है।

(९) ज्ञानेन्द्रिय स्वाद लेने की शक्ति रसना का स्थान है।

(१०) कर्मेन्द्रिय—जल तत्व मूत्र त्याग शक्ति उपस्थ का स्थान है।

(११) लोक—भुवः है।

(१२) तत्त्व बीज का वाहन—मकर जिसके ऊपर वरुण विराजमान हैं।

(१३) अधि पति देवता—विष्णु अपनी डाकिनी के साथ।

(१४) यन्त्र—अर्ध चन्द्राकार श्वेत रंग।

(१५) ध्यान का फल—सृजन, पालन, और निधन में समर्थता तथा जिह्वा पर सरस्वती देवी का होना।

[३] मणिपूरक चक्र (Solar plexus)

(१) स्थान नाभि मूल है।

(२) आकृति—नीले रंग के प्रकाश से प्रकाशित दस दलों वाले कमल के समान।

(३) दलों के अक्षर—डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं।

(४) तत्व स्थान—रक्त रंग त्रिकोणाकार वाले अग्नि तत्व का स्थान।

(५) तत्व बीज—रं है।

(६) तत्व बीज गति—मेष की तरह ऊपर को गति है।

(७) गुण—रूप है।

(८) वायु स्थान—समान वायु का मुख्य स्थान है।

(९) ज्ञानेन्द्रिय--देखने की शक्ति चक्षु का स्थान है।

(१०) कर्मेन्द्रिय--अग्नि तत्व से उत्पन्न चलने की शक्ति पैर का स्थान है।

(११) लोक--स्वः है।

(१२) तत्व बीज का वाहन--मेष जिसके ऊपर अग्नि देवता विराजमान हैं।

(१३) अधिपति देवता--रुद्र अपनी चतुर्भुजा शक्ति लाकिनी के साथ।

(१४) यन्त्र--त्रिकोण रक्त रंग।

(१५) फल--शरीर व्यूह का ज्ञान तथा अजीर्ण आदि रोग से निवृत्ति।

[४] अनाहत चक्र (Cardiac plexus)

(१) हृदय के पास स्थान।

(२) आकृति--सिन्दूरी रंग के प्रकाश से भासित बारह दलों वाले कमल के समान।

(३) दलों के अक्षर--कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं।

(४) तत्व स्थान--धूम्र रंग, षटकोणाकार वायु तत्व का स्थान है।

(५) तत्व बीज--यं है।

(६) तत्व बीज गति--मृग की तरह तिरछी गति है।

(७) गुण--स्पर्श है।

(८) वायु स्थान--मुख व नासिका से गति करने वाले प्राण वायु का स्थान है।

(९) ज्ञानेन्द्रिय--स्पर्श की शक्ति त्वचा का केन्द्र है।

(१०) कर्मेन्द्रिय--वायु तत्व से उत्पन्न पकड़ने की शक्ति हाथ का स्थान है।

(११) लोक--महर्लोक है।

(१२) तत्व बीज का वाहन--मृग।

(१३) अधिपति देवता--ईशान रुद्र अपनी त्रिनेत्र शक्ति काकिनी के साथ।

(१४) यन्त्र--षट कोणाकार धूम्र रंग।

(१५) फल--वाक् पतित्व, कवित्व शक्ति का लाभ, जितेन्द्रिय होना।

[५] विशुद्ध चक्र (Carotid plexus)

(१) स्थान--कण्ठ देश।

(२) आकृति--धुंधले रंग से प्रकाशित १६ दलों वाले कमल जैसी।

(३) दलों के अक्षर--अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ औ अं, अः।

(४) तत्व स्थान पूर्ण चन्द्र के सदृश गोलाकार आकाश तत्व का स्थान।

(५) तत्व बीज--हं है।

(६) तत्व बीज की गति--हाथी की तरह घुमाव के साथ गति है।

(७) गुण--शब्द है।

(८) वायु स्थान--उदान वायु का स्थान है।

(९) ज्ञानेन्द्रिय श्रवण शक्ति श्रोत्र का स्थान है।

(१०) कर्मेन्द्रिय--वाक् शक्ति वाणी का स्थान है।

(११) लोक—जनः है।

(१२) तत्व बीज का वाहन—हस्ती जिसके ऊपर प्रकाश देवता आरूढ़ है।

(१३) अधिपति देवता—पंच मुख वाले सदा शिव अपनी शक्ति शाकिनी के साथ।

(१४) यन्त्र—पूर्णचन्द्र के सदृश गोलाकार

[७] सहस्रार चक्र (Cerebral plaxus)

(१) स्थान तालु के ऊपर मस्तिष्क में।

(२) आकृति - नाना रंग के प्रकाश से युक्त सहस्र दलों वाले कमल के समान।

(३) दलों के अक्षर—अ से लेकर क्ष तक

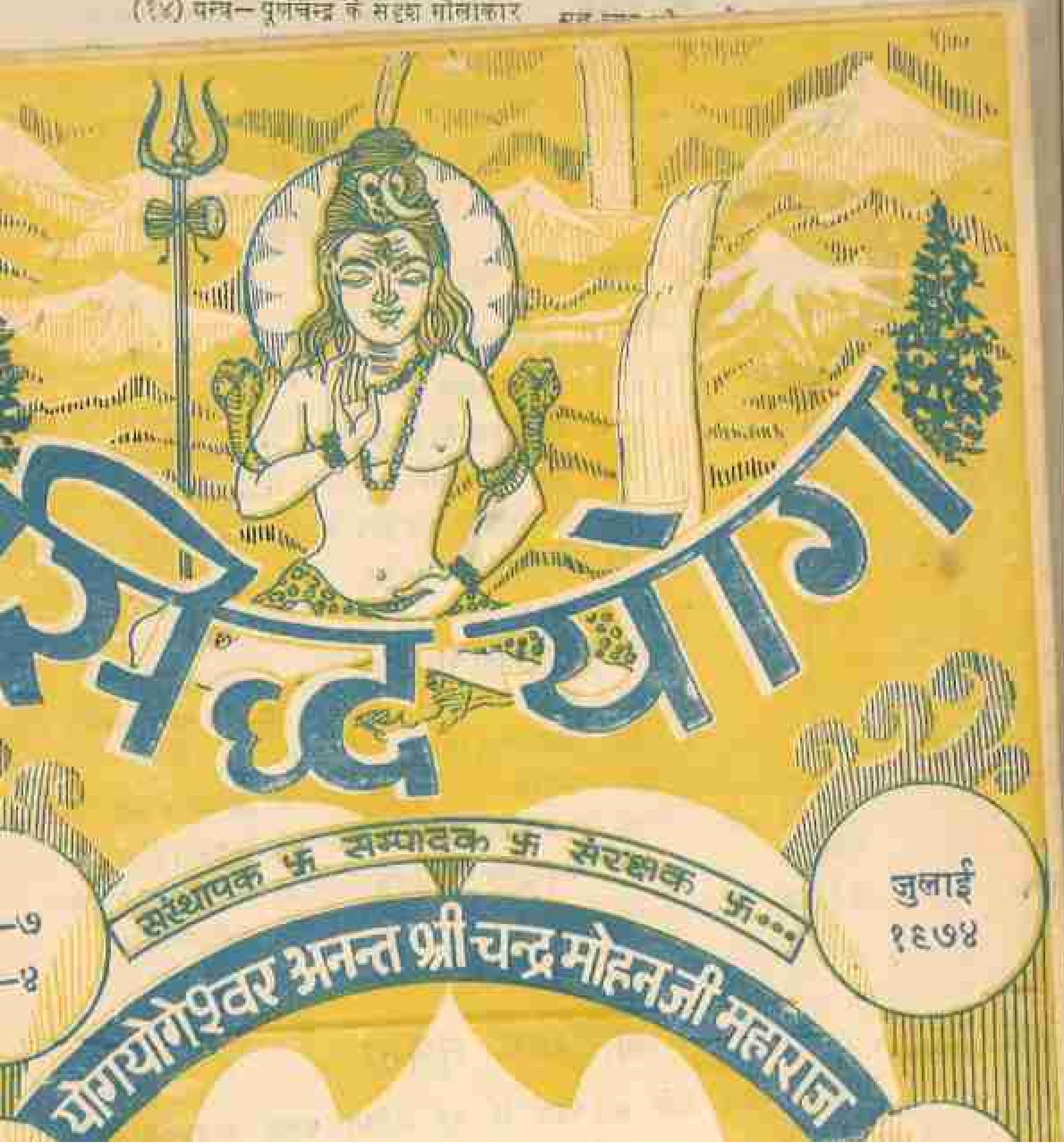

सारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इसी त्रिकोण योनि मण्डल में एक अति सूक्ष्म विद्युत समान अद्भुत दिव्य शक्ति नाड़ी लिपटी हुई पड़ी है। इसका दृष्टान्त एक ऐसी सर्पिणी से दे सकते हैं जो साढ़े तीन लपेटे खाये हुये अपनी पूँछ को मुख में दबाये कुण्डलाकार होकर सो रही हो। इसी को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। यह भी सूक्ष्म शरीर का अंग है। कुण्डलिनी के सम्बन्ध में हम पहले विस्तार से बता आये हैं।

यह नाड़ी यदि किसी प्रकार से अपने लपेटों को खोलकर सीधी हो जाय और इसका मुख सुषुम्ना नाड़ी के भीतर चला जाय तो इसको कुण्डलिनी का जागरण कहते हैं। जिस प्रकार सुसज्जित कमरे में बिजली के तार, नाना वर्ण के ग्लोब तथा बिजली के यन्त्र पंखे आदि लगे हों तो बिजली के बटन को दबाने से यह सब क्रमशः प्रकाश देने तथा मे पहुँचता है तब सारे चक्रों और नाड़ियों को अपना-अपना कार्य करना आरम्भ कर देते हैं, इसी प्रकार कुंडलिनी रूपी बटन को दबाने से विद्युत का प्रवाह सुषुम्ना रूपी तार प्रकाशित कर देता है। जिस-जिस चक्र पर यह कुंडलिनी शक्ति पहुँच जाती है वह अधोमुख से ऊर्ध्व मुख होकर विकसित होता जाता है। जब यह आज्ञा चक्र पर पहुँच जाती है तब सम्प्रज्ञात, और जब सहस्रार तक पहुँच जाती है तब असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

कुंडलिनी शक्ति शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर सात्विक विचार, अन्तःकरण, ईश्वर की सच्ची भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था से निश्चल ध्यान से जाग्रत होती है। जहाँ कहीं अकस्मात् किसी मनुष्य में अलौकिक शक्ति, अद्भुत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास देखने में आवे तो समझना चाहिये कि पूर्व जन्म के किन्हीं संस्कारों के उदय होने अथवा हृदय पर सात्विक प्रभाव डालने वाली अन्य किसी घटना से कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना के मुख में चली गई है।

जीवन तत्व साधन की उत्क्षेपण क्रिया से सूक्ष्म शरीर के सभी कोषों, नाड़ियों, ज्ञान तन्तुओं तथा चक्रों में उत्तेजना उत्पन्न होती है तथा तीनों शरीरों में सामंजस्य उत्पन्न होकर नव चेतना का संचार होता है।

महाप्रभु द्वारा आविष्कारित इन क्रियाओं की व्याख्या करते समय शरीर रचना के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता इस कारण पड़ी कि साधक अपने स्थूल व सूक्ष्म शरीर के विविध क्रिया कलापों को समझ सकें और जीवन तत्व साधन की क्रियाओं का अभ्यास करते समय सम्बन्धित अंगों पर ध्यान केन्द्रित करते रहें और भावना करते रहें कि हमारे उक्त अंग निरोग व शक्तिशाली हो रहे हैं और उनमें नव चेतना का संचार हो रहा है।

हर क्रिया के साथ दो वृत्तियां बनती हैं। एक क्रियात्मक व दूसरी भावनात्मक। जीवन तत्त्व साधन की क्रियाओं के साथ भी दोनों वृत्तियों को बनाने की आवश्यकता पड़ती है और तभी पूर्ण लाभ होता है।

अंगों के संचालन द्वारा क्रियात्मक वृत्ति बनती है तथा सम्बन्धित अंगों के सशक्त व निरोग होने की विचारधारा से भावात्मक वृत्ति बनती है। जैसे बिजली के Positive और Negative तारों द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित होती है, उसी तरह साधक को अभ्यास के समय दोनों प्रकार की वृत्तियां पैदा करनी चाहिये और तभी विद्युत संचार होकर पूर्ण लाभ होता है।

अब हम अनन्त श्री विभूषित योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज के चरण कमलों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये इस लेख को समाप्त करते हैं।

अन्त में एक और खतरे की ओर संकेत

हम अभी तक बताते आये हैं कि जीवन-तत्त्व साधन की क्रियाओं को करने से अमुक-अमुक लाभ होता है। अब हम इन क्रियाओं से होने वाले हानियों की ओर भी संकेत दे देना चाहते हैं। इन क्रियाओं को विधि पूर्वक और नियम से करने से दो हानियां दृष्टि-गोचर होती हैं। और

(१) साधक शास्त्रानुकूल धर्माचरण नहीं कर पाता।

(२) साधक को भगवान का विस्मरण हो जाता है।

आप कहेंगे कि कैसे—तो सुनिये

(१) हमारे धर्मशास्त्रों में लिखा है कि मनुष्य को सप्ताह में एक दिन या हर एकादशी को या मास में एक दिन व्रत रखना चाहिये। किन्तु जीवन तत्त्व साधन करने वाला व्यक्ति व्रताचरण नहीं कर सकता। इन क्रियाओं को करने से भूख बढ़ जाती है। अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और साधक व्रताचरण करने में असमर्थ हो जाता है। उसके लिये शास्त्रानुकूल धर्माचरण करना सम्भव नहीं है।

(२) एक बार भगवान कृष्ण ने कुन्ती से कहा कि माताजी ! मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूं, आप कोई वर मांगिये। कुन्ती ने कहा कि भगवन् ! आप कोई ऐसा उपाय कीजिये कि मेरे शरीर में कोई न कोई कष्ट बना रहे तथा किसी न किसी प्रकार का दुख मौजूद रहे। क्योंकि रोग व कष्ट होने पर ही आपकी याद आती है और हम आपको स्मरण करते हैं। सर्वथा निरोग व सुखी हो जाने पर आपकी स्मृति समाप्त हो जाती है। सुख में भगवान का विस्मरण हो जाता है। कहा भी है कि—

दुख में सुमिरन सब करें,
सुख में करे न कोय।

जीवन तत्त्व साधन करने वाले के शरीर से समस्त रोग निकल जाते हैं तथा वह पूर्ण-तया निरोग हो जाता है। बाल मचलन व बच्चे के ध्यान की क्रियायें करने से उसके अन्दर प्रसन्नता का समुद्र लहराने लगता है, अतः साधक निरोग व सुखी होकर भगवान को भूल जाता है, अथवा ऐसी सम्भावना रहती है कि भगवान का विस्मरण हो जाये।

(३) जीवन तत्व साधन करने वाले की भूख बहुत बढ़ जाती है और वह और अधिक भोजन करने लगता है। हर प्रकार के अन्न, फल दूध आदि खाने की इच्छा बनी रहती है। वह जो कुछ खाता है वह हजम भी हो जाता है। इस बढ़ी हुई भूख को पूरा करने के लिये उसे अधिक भोजन का प्रबन्ध करना पड़ता है। आज की भीषण मंहगाई में खाद्य पदार्थों के दाम आकाश को छू रहे हैं। और ऐसे समय में अधिक भोजन का प्रबन्ध करना अपने खर्चे को बढ़ाना है। मजबूरन साधक को भोजन व्यय पर अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है।

अतः

आप सोच समझ लें और उपरोक्त तीन प्रकार की हानियों को ध्यान में रखकर इन क्रियाओं का अभ्यास आरम्भ करें।

नरक के दारुण दुःख

[द्वारा श्री चन्द्रभान गुप्ता सहायक अभियन्ता रुड़की]

समस्त प्राणी चार तरह के पापों में त्रास पैदा करने वाले असम्त भयंकर यमराज के लोक को जाया करते हैं और विवश होकर उन्हें वहाँ अवश्य ही जाना पड़ता है। गर्भ से स्थित रहकर जन्म धारण करने वाले बालक युवा प्रौढ़ और वृद्ध तथा स्त्री एवं पुरुष और नपुंसक सभी को यह बात भली-भाँति जान व समझ लेनी चाहिए। वहाँ पर लेखा-जोखा रखने वाले धर्मराज के मन्त्री चन्द्रगुप्त आदि तथा महर्षि वशिष्ठ आदि मुनियों द्वारा समस्त जीवों के शुभाशुभ कर्म का विचार किया जाता है। अपना किया हुआ कार्य सभी को अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसलिये ऐसे कोई भी प्राणी नहीं है जो यमराज के लोक को नहीं जाते हैं। शुभ-अशुभ कर्मों का निर्णय वहाँ पर ही होता है इन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले और सौम्य चित्त वाले कृपा पूर्ण मनुष्य होते हैं वे वहाँ यमलोक में सौम्य मार्ग से पूर्व द्वार को जाया करते हैं, वे जो अनेक पाप करने वाले महापापी एवं दान शून्य प्राणी होते हैं, वे घोर दक्षिण दिशा के मार्ग से यमराज के लोक को जाया करते हैं। वह वैवस्तपुर अनेक रूप में स्थित है और वहाँ जाने के लिये ८६ हजार योजन कोसों का फासला तय करके जाना पड़ता है।

यही यमलोक पुण्यात्माओं को तो अत्यन्त समीप में स्थित जैसा प्रतीत होता है और पापियों को अत्यन्त ही दूर में स्थित जैसा लगता है। पापी प्राणी बड़े भयंकर मार्ग से होकर इस लम्बी यात्रा को पूरा करते हुये वहाँ पहुँच पाते हैं। मार्ग में कहीं भयानक बकाँटे बिछे हुये हैं तो कहीं बालू रेत ही रेत

भरी पड़ी है। किसी जगह पैरे की तीखी धारा के तुल्य चीर देने वाला पाषाण बिछे हुये हैं ऐसे मार्ग से जाना पड़ता है। वह मार्ग कहीं तो बहुत भारी दल दल से युक्त कीचड़ वाला होता है—किसी जगह उल्लोक पापों से युक्त तो कहीं लोहे की सुई के समान तीखी कुशाओं से युक्त होता है। उस मार्ग में कहीं-कहीं तटप्राय: प्रदेशों के समान अत्यन्त कठिन पर्वत होते हैं और किसी जगह घने वृक्षों का भयानक जंगल होता है। किसी स्थान पर तपे हुये अंगारे भरे होते हैं। ऐसे मार्ग में प्राणी बहुत ही दुखित होते जाया करते हैं। यमलोक के मार्ग में किसी जगह बहुत भारी गर्त आते हैं, कहीं ऊँचे टीले होते हैं और कहीं पर खूब तपी हुई बालू होती है तीखे कीले गड़े होते हैं। यमपुर का रास्ता बहुत ही कठिन होता है, कहीं भयानक शाखा-युक्त बाँसों का जंगल होता है और किसी जगह घोर अन्धकार छाया रहता है तथा उस मार्ग में ऐसे बहुत से आधार रहा करते हैं। वह रास्ता कहीं लोहे के सिघाड़ों से व्याप्त रहता है जो बहुत ही तीखे होते हैं किसी जगह दावानल से व्याप्त रहता है किसी स्थान पर तपी हुई पाषाण शिलाएँ मिलती है तो कहीं बहुत ठण्डी बर्फ जमी हुई रहती है।

उस यमपुर के मार्ग में कहीं कण्ठ पर्यन्त गड़ जाने वाली तप्त बालू है तो किसी जगह दूषित गन्दा जल भरा रहता है। किसी मार्ग पर करीष की अग्नि व्याप्त रहा करती है। मार्ग में किसी स्थान पर सिंह बाघ और भेड़िया आदि हिंसक एवं भयानक जीव होते है। कहीं पर अजगर भरे हुये है तो कहीं भयानक मच्छर और जौंक मिला करती है। यमपुर का मार्ग विषैली मक्खी सर्प और मतवाले वलोन्मत्त हाथियों से पूर्ण रहता है जो कि बीच बीच में जहाँ तहाँ मिला करते है और भय देते है। यह रास्ता सब ओर भयावह जीवों से भरा पूरा रहता है। कहीं तीक्ष्ण दाढ़ी से जमीन खोदने वाले जंगली शूकर है तो कहीं पैने सींगों वाले भैंसे रहा करते हैं। सभी प्रकार के हिंसक जानवर वहाँ मिला करते है। मार्ग में बहुत विकट डाकिनी विकराल राक्षस दिखाई देते है। इस तरह उस मार्ग में अत्यन्त घोर व्याधियों से पीड़ित होकर जाया करते हैं। इस यमपुर के मार्ग के प्राणी भयानक धूल से व्याप्त होकर वायु के झोंकों से झकझोरते हुए होकर और वृहत पाषाण वृष्टि से निराश्रय एवं परम क्लेशित होकर बड़ी कठिनाई से तय किया करते हैं। किसी जगह बिजली के सन्ताप से झुलसते हुये और किसी जगह चारों ओर से होने वाले बाणों की वर्षा से पीड़ित होते हुए इस यमपुर के मार्ग को पूरा करते हैं।

श्री गुरु पूजन माहात्म्यम्

[पण्डित किशोरीलाल शास्त्री–झाँसी उ० प्र०]

इस सृष्टि के प्रारम्भ में जब हिरण्याक्ष दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल में ले गया और वहाँ प्रलय कालीन महा मलिन पंक में पृथ्वी को छिपा दिया, तब श्री ब्रह्माजी की प्रार्थना से श्री भगवान् महा विष्णु ने वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष दैत्य का वध करके पृथ्वी का उद्धार किया था। जिस समय भगवान् ने जल के ऊपर पृथ्वी की स्थापना की तब पृथ्वी की दैवी शक्ति ने स्त्री रूप में प्रगट होकर भगवान् से विश्व के सभी व्यवहारों के प्रश्न किये हैं। उन प्रश्नों के उत्तरों में ही श्री भगवान् ने मूर्ति पूजन का विस्तार पूर्वक विधान वर्णन करते हुए श्री गुरु पूजन की बड़ी प्रशंसा की है। उसका कुछ सारांश श्री गुरु भक्ति में श्रद्धा न रखने भटके हुए लोगों को– मानव के प्रमुख कर्त्तव्य स्वरूप गुरुभक्ति में तत्पर होने के लिये लिखा जा रहा है। क्योंकि मानव का जन्म साफल्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होने में ही है। और यह सफलता बिना गुरु के कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दिला सकता। जैसा कि महात्मा पुरुषों ने कहा है :—

गुरु बिन भव निधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई॥

अर्थात् कोई भी जीवात्मा ब्रह्मा और शंकरजी के समान उच्च पद पाकर भी श्री गुरु की कृपा के बिना संसार समुद्र को पार नहीं कर सकता। इसी बात का समर्थन करते हुए श्री भगवान् पृथ्वी से कह रहे हैं :—

हे देवी! प्रत्येक शुभ धार्मिक कार्य में गुरु का पूजन करना चाहिये यदि कर्त्ता मुझ में मिलना चाहता है।

हे देवी! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि जो पुरुष विधि से भक्ति पूर्वक गुरु की पूजा करता है उसने गुरु के रूप में मेरी ही पूजा की है।

संसार में प्रसन्न हुआ राजा (शासक) बड़ी कठिनता से केवल ग्राम ही देगा। परन्तु प्रसन्न हुए श्री गुरुदेव तो सहज ही में ब्रह्मपद को भी दे देते हैं, इन्द्रादि के पद की तो बात ही क्या है।

इसी से मेरे शरीर स्वरूप सभी वैष्णव शास्त्रों में श्री गुरु पूजन का विशेष विधान लिखा गया है। क्योंकि यह मेरी ही आज्ञा है–

पूजयीत गुरुं तत्र,
यदोच्छेन्मम सात्म्यताम्।

यो गुरुं पूजयेद् भक्त्या,
विधि दृष्टेन कर्मणा ।
तेनाहं पूजितो नित्यं,
देवि सत्यं ब्रवीमिते ॥
तुष्टो ददाति कृच्छ्रेण
ग्राम मात्रं नराधिपः ।
आब्रह्मपद पर्यन्तं,
हेलया यच्छते गुरुः ॥
तथैव मम शास्त्रेषु,
ममैव वचनाच्छुभे ।
सर्व शास्त्रेषु कल्याणि,
गुरु पूजा व्यवस्थिता ॥

श्री भगवान आगे ताम्र मूर्ति के पूजन विधान में फिर से गुरु पूजन का आदेश देते हैं—

गुरुं भागवतं चैव,
मर्चयेच्च यथाविधि ।
विशेषेण गुरुः पूज्यः,
वस्त्रालंकार भोजनैः ॥
तेनाहं पूजितो भूमे !
सत्य मेतद् ब्रवीमिते ।
गुरुः यस्य न तुष्टो वै,
तस्मा दुर तरो ह्यहम् ॥

अर्थात् हे भूमि ! देव पूजन के बाद अपने भागवतों गुरुजनों को पूजना चाहिये । और विशेषकर वस्त्र अलंकार और भोजन से अपने गुरु की अवश्य पूजा करें । उस गुरु पूजन के द्वारा मैं ही पूजित होता हूँ । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ । जिसका गुरु अप्रसन्न रहता है, उस भक्त से मैं निश्चित ही दूर से भी दूर रहता हूँ ।

श्री भगवान् आगे फिर कांस्य मूर्ति के पूजन विधान में भी इसी प्रकार गुरु पूजन का विशेष जोर देकर आदेश देते हैं, साथ देते हैं, साथ ही भक्त, ब्राह्मण और गुरु की निन्दा करने वाले पर अपना क्रोध प्रकट करते हुए निन्दक के नाश करने की प्रतिज्ञा करते हुए सत्य को साक्षी देते हैं :—

यो गुरुं पूजयेद् भूमे !
भक्ति युक्तेन चेतसा ।
अंगुलीयक वासोभिः,
दान संमाननादिभिः ॥
तेनाहं पूजितो देवि !
एव मेतन्न संशयः ॥
ब्राह्मणान् मम भक्तांश्च,
गुरुं चैव विनिन्दति ।
नाशयिष्यामि तं देवि !
सत्य मेतद् ब्रवीमि ते ॥

अर्थात् हे भूमि ! जो मनुष्य भक्ति युक्त मन से स्वर्ण की अंगूठी, वस्त्र, दान, मान, सम्मान आदि के साथ गुरु की पूजा करता है । उस पूजा के द्वारा मैं ही पूजित होता हूँ । यह निःसन्देह सत्य है । और जो ब्राह्मणों की, मेरे भक्तों की और गुरु की निन्दा करता है मैं उसका नाश कर देता हूँ यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ।

इस प्रकार श्री भगवान् महा विष्णु ने भी मूर्ति पूजा के प्रत्येक विधान में श्री गुरुदेव के पूजन का आदेश देते हुए निम्नांकित श्लोक की भावना की ही पुष्टि की है :—

गुरुः ब्रह्मा, गुरुः विष्णुः,
गुरुः देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म,
तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अर्थात् श्री गुरुदेव ही ब्रह्मा विष्णु महेश है और साक्षात् पर ब्रह्म स्वरूप श्री गुरुदेव को प्रणाम है।

इस श्री गुरु पूजन की महत्ता के अध्ययन से यह अनुमान दृढ़ होता है कि हम प्रतिवर्ष अपने अपने घरों में कई बार देव पूजन करते कराते रहते है, परन्तु उस समय साक्षात् गुरु पूजन न कर पाने की कमी को ही पूरा करने के लिये, हमारे परम विवेकी पूर्वजों ने "कम से कम वर्ष में एक बार तो अवश्य ही साक्षात् श्री गुरुदेव का पूजन हो जाय" इस भावना से ही आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को "गुरु पूर्णिमा" यह नाम दिया है। इससे हमें प्रति वर्ष अवश्य ही एक बार साक्षात् गुरुचरणों की सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि समय की विपरीतता के कारण हम प्रतिदिन भी स्मरण द्वारा अथवा श्री गुरुदेव के चित्रपट की करुणापूर्ण मन से पूजन के द्वारा भी श्री गुरुदेव की पूर्ण कृपा को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते। आज के वातावरण में मन को स्थिर कर लेने का सौभाग्य किसी विरले ही भक्त को प्राप्त होता है। और मन की स्थिरता के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे फ्यूज बल्ब मे विद्युत का प्रकाश नहीं आता। इससे साधकों को सदा सावधान रहना चाहिये।

प्राण का मन के साथ निकट सम्बन्ध है। प्राण की चंचलता के साथ मन चंचल होता है, और प्राण की स्थिरता से मन स्थिर होता है। इस कारण मन की एकाग्रता के लिये प्राण के स्वास्थ्य की बड़ी भारी आवश्यकता है। यही प्राणायाम का महत्त्व है। अर्थात् प्राणायाम न केवल शारीरिक आरोग्य करता है प्रत्युत मानसिक उन्नति का भी मार्ग खोल देता है।

हे गुरुदेव !

हे गुरुदेव; आप ही ब्रह्म-ज्ञान का स्पष्ट बोध कराने में समर्थ हैं। विद्या-रूपी कमल का विकास आप ही हैं। परा प्रकृति एक श्रेष्ठ तरुणी है और आप इसके साथ सुख-पूर्वक क्रीड़ा करते हैं। संसार रूपी अन्धकार का नाश करने वाले सूर्य आप ही हैं। आपका स्वरूप अमर्याद है। आपकी सामर्थ्य अनन्त है। जो तुरीयावस्था अर्थात् आत्म-समाधि अभी हाल में युवावस्था में प्राप्त होने को है, सहज रीति से उसका लालन-पालन करने वाले आप ही हैं। इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप समस्त संसार का पालन करने वाले और शुभ कल्याण रूपी रत्नों का संग्रह हैं। सज्जन रूपी वन को सुगन्धित करने वाले चन्दन आप ही हैं। आराधना करने के योग्य देवता आप ही हैं। इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिस प्रकार चकोर के चित्त को चन्द्रमा सन्तुष्ट और शान्त करता है, उसी प्रकार चतुर जनों के चित्त को आप सन्तुष्ट तथा शान्त करते हैं। आप आत्म-साक्षात्कार के सर्वाधिकारी हैं, वेद के ज्ञान-रस के सागर हैं और समस्त संसार को मन्थन करने वाला जो काम-विकार है, उस काम-विकार का मन्थन करने वाले आप हैं। हे गुरुदेव, इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

केवल यही नहीं, जिस किसी पर भी आपकी दृष्टि का प्रकाश पड़ जाता है अथवा आपका कोमल हाथ जिसके मस्तक पर जा पड़ता है वह जीव होने पर भी शिव की बराबरी का हो जाता है। जिसके कार्यों का ऐसा माहात्म्य है, उसका मैं अपनी मर्यादित वाणी के बल से भला कैसे वर्णन कर सकता हूँ! कोई सूर्य के शरीर में भी उबटन लगा सकता है? फूलों से भला कल्प-वृक्ष का कहाँ तक शृंगार किया जा सकता है? क्षीर सागर का आतिथ्य भला किस प्रकार के पकवानों से किया जा सकता है? कपूर को किस सुगन्धित वस्तु से सुगन्धित किया जा सकता है? चन्दन पर किस चीज का लेप लगाया जा सकता है? अमृत का कौन-सा अन्न पकाया जा सकता है? क्या आकाश को और भी ऊपर उठाने की कोई युक्ति हो सकती है? ठीक इसी प्रकार श्री गुरुदेव के माहात्म्य का पूरा-पूरा आकलन करने के लिए कहाँ और कौन-सा साधन प्राप्त हो सकता है?

—सन्त ज्ञानेश्वर

ऋषिकेश उत्सव समाचार

ऋषियों की तपः पूत भूमि ऋषिकेश में पतित पावन पुण्य-सलिला भागीरथी के सुरम्य तट पर स्थित योग साधन-आश्रम का दशहरा महोत्सव सोल्लास बड़ी सजधज के साथ २८, २९, ३० मई को मनाया गया। भारत के विभिन्न प्रान्तों से सत्संगी साधकों तथा योग जिज्ञासुओं के उमड़ते हुए प्रवाह से उत्सव की शोभा प्रतिदिन बढ़ती ही गई। तीस मई को महाप्रभु श्री रामलाल की दिव्य झांकी की आनन्दमयी छटा तथा अन्य झांकियां एवं संकीर्तन मण्डलों की मंगलमयी हरिनाम संकीर्तन ध्वनि तथा जयजयकार से नगर में आनन्द का सागर हिलोरें लेने लगा।

प्रतिदिन प्रातः से सायं तक योग क्रियाओं के प्रदर्शन, प्रवन्चन तथा हरिनाम संकीर्तन एवं शास्त्रीय संगीत से जन-जन के हृदय में अभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति होती रहती। तीस मई को ब्रह्मभोज, तथा भण्डारे से उत्सव की पूर्णाहुति हुई। सायंकाल नगर में दिव्य झांकियों का प्रक्रमण हुआ।

अपने समापन प्रवचन मेंपरमपूज्य गुरुदेवजी ने योग की महिमा का वर्णन करते हुए सद्गुरु तत्व की शास्त्रीय विवेचना करते हुए बताया कि सद्गुरु तत्व केवल अस्थि मांस के शरीर की परिधि तक ही सीमित नहीं है अपितु महाकाश की भांति सर्वत्र व्यापक है। वह काल की हद से भी परे है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दुर्गा की ब्रह्म वैवर्त, विष्णु पुराण, शिव पुराण तथा देवी भागवत पुराण में एक-एक देव को परम देव मानकर स्तुति की गई है, जिससे साधक के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि किस देवता की पूजा सर्व प्रथम की जाय? अनेक सन्त भी पूज्य हैं। जिन जीवों में चाहे वे पशु हों (यथा कछुआ, सूकरादि) अथवा मनुष्य उस परम शक्ति प्रणव ऊँकार स्वरूप की कला और अंश का अवतरण होता है वह उस सत्ता की उपस्थिति के कारण पूज्य होता है। किन्तु सत्गुरु तत्व अखण्ड मण्डलाकार अनन्त रूप है। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदंविभाति।' अर्थात् उस सत्गुरुतत्व को चाहे परमात्मा कहें, चाहे खुदा कहें उससे ही सूर्य, चन्द्र तारे तथा अग्नि प्रकाशित हैं। वह शक्ति योगयुक्त होने पर आविर्भूत होती है। भगवान श्रीकृष्ण ने योगयुक्त होकर जो गीता सुनाई वह दुबारा अर्जुन के पूछने पर नहीं सुना सके।

Sidhayoga Regd No. L. Ag 0008

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षकः
योगिराज अनंत श्रीचन्द्रमोहनजी महाराज

सद्गुरु कौन ?

सद्गुरु वही है जो वासना रूपी नदी में डूबते हुए प्राणी को बचाकर उसे ज्ञान के सुन्दर उपवन में पहुँचाता है।

सद्गुरु वही है जो एक देहीय जीव को ब्रह्म स्वरूप बनाता है, जो अपने वचन मात्र से संकट को दूर करता है और जो शुद्ध ब्रह्म ज्ञानी होने पर भी कर्मयोगी हो, सदा उत्तम आचरण करता हो, आप्त काम हो, शिष्यों के अन्तःकरण के सन्देहों का निराकरण करते हुए उन्हें सुपथ पर ले चलने की क्षमता रखता हो।

अपने माता-पिता भी गुरु होते हैं पर भवसागर से पार लगाने वाले सद्गुरु दूसरे ही होते हैं।

जो लोग करामातें दिखलाते हैं वे भी गुरु कहलाते हैं पर वे मोक्ष देने वाले गुरु नहीं होते।

सद्गुरु उसी को समझना चाहिए जो ज्ञान का बोध कराता हो तथा अविद्या का समूल नाश करता हो।

—समर्थ स्वामी रामदास

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज, आगरा-१